जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2530

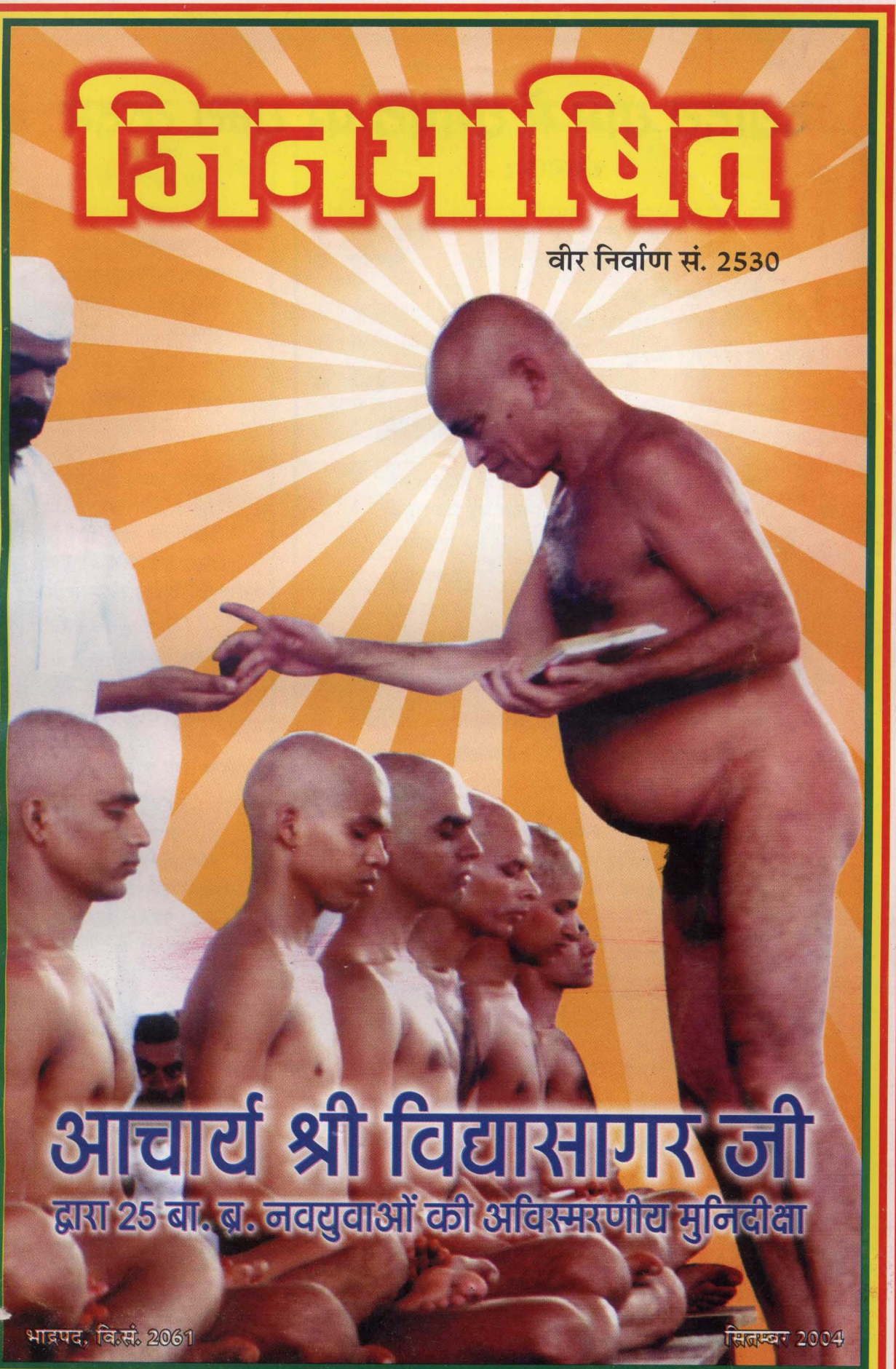

आचार्य श्री विद्यासागर जी

द्वारा 25 बा. ब्र. नवयुवाओं की अविस्मरणीय मुनिदीक्षा

भाद्रपद, वि.सं. 2061 सितम्बर 2004

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दयोदय धाम में धर्मपथ पर धन्य कदम

पवित्र नर्मदा के किनारे तिलवाराघाट स्थित दयोदय धाम में शनिवार, 21 अगस्त 2004 को 25 मुनियों ने सामूहिक दीक्षा लेकर धर्म पथ पर अपने धन्य कदम बढ़ा दिए। इस बीच आचार्यश्री विद्यासागर जी के श्रीमुख से गूँजते रहे, जिनवाणी के परमकल्याणकारी महामंत्र और उन्होंने मुनिसंघ में नव-पदार्पण करने वाले ब्रह्मचारियों के लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का मार्गदर्शन और 28मूलगुणों पर कुंदन सा खरा उतरने का कठोर अनुशासन पालन करने का उपदेश दिया। अपने नवशिष्यों व श्रावकों को संबोधित करते हुए आचार्यश्री ने कहा कि कभी ऋषि जाबलि ने यहाँ तपस्या की थी। जाबलि के नाम से प्रख्यात यह संस्कारधानी अब इन 25 मुनियों : वीरसागर, क्षीरसागर, धीरसागर, उपशमसागर, प्रशमसागर, आगमसागर, महासागर, विराटसागर, विशालसागर, शैलसागर, अचलसागर, पुनीतसागर, वैराग्यसागर, अविचलसागर, विशल्यसागर, धवलसागर, सौम्यसागर, अनुभवसागर, दुर्लभसागर, विनम्रसागर, अतुलसागर, भावसागर, आनंदसागर, अगम्यसागर और सहजसागर की दीक्षा भूमि बन गई है।

उन्होंने श्रावण शुक्ला की सप्तमी के इस दिन को योग और प्रयोग का दिन करार दिया। अरबों रुपयों खर्च करने के बाद भी यह दृश्य प्राप्त नहीं हो सकता। परीक्षा में विद्यार्थी को किसी विषय में पूरक आ सकता है, वह कम अंक ला सकता है, लेकिन मुनि जीवन में सभी 28मूलगुणों की परीक्षा में पास होना अनिवार्य ही नहीं है, बल्कि उसमें अच्छे अंक लाना भी जरूरी है। उन्होंने मुनिरूप में दीक्षित अपने नवशिष्यों को निर्दोष व निष्कलंक मुनि जीवन जीने की आज्ञा दी। इससे पूर्व ब्रह्मचारियों ने आचार्यश्री से न केवल दिगंबरी दीक्षा देने का निवेदन किया, बल्कि अपने माता-पिता के उपकारों और धर्मपथ पर चलने की प्रेरणा देने के प्रति उनका आभार व्यक्त किया। कुछ ब्रह्मचारियों ने बेहद भावुक विनय की, कि उनकी सल्लेखनापूर्ण समाधि आचार्यश्री के चरणों में ही हो और आचार्यप्रवर का आशीर्वाद उन्हें और उनके परिवार को मिलता रहे। कुछ ब्रह्मचारियों ने अपने माता-पिता की सल्लेखनापूर्ण समाधि के वक्त आचार्यश्री से वहाँ उपस्थित रहने की प्रार्थना की। आचार्यश्री ने ब्रह्मचारियों की विनय के बाद हर एक के सिर पर हाथ रखा। केशलुंचन किया। उन पर अक्षत-पुष्प डाले। उनके सिर पर गंधोदक से स्वास्तिक बनाए। हाथ में जिनवाणी लिए वे मंत्रोच्चार करते और नवदीक्षित मुनियों को निर्देश देते जा रहे थे। गंधोदक क्रिया के उपरांत उन्होंने ब्रह्मचारियों को वस्त्र त्यागने का आदेश दिया। इस अलौकिक दृश्य को देखने के लिए श्रद्धालुओं में अपूर्व उत्साह देखा गया। जैनधर्मावलंबियों ने इसे साक्षात् देवदर्शन करार दिया। कार्यक्रम का संचालन मुनि प्रसादसागर जी कर रहे थे।

ब्रह्मचारियों को वस्त्र त्याग कर मुनिवेश में आने के दृश्य की एक झलक पाने डेढ़ लाख श्रद्धालु बेताब हो उठे। अनुशासन के सारे तटबंध टूट गए और आचार्यश्री को खुद अनुशासन को बनाए रखने की बार-बार अपील करनी पड़ी।

मुनिदीक्षा प्राप्त ब्रह्मचारियों के माता-पिता-भाई-बहन भी इस विलक्षण क्षण को अपनी नजर के कैमरे में कैद करने आए थे। उन्होंने न केवल आचार्यश्री का आशीर्वाद प्राप्त किया, बल्कि अपने पुत्रों को मुनिवेश में देखकर उनके नेत्र अश्रुपूरित हो उठे। कोई माता अपने हाथ में आरती लिए हुए थीं, तो कोई नारियल। सबकी आँखों में आँसू थे। वे अपने दुलारे को मुनि जीवन में प्रवेश होते देख रही थीं।

आचार्यश्री विद्यासागर जी के द्वारा दी गई मुनिदीक्षा के उपरांत अब उनके संघ में मुनियों की संख्या 89 हो गई है। इससे पूर्व आचार्यश्री के द्वारा 64 मुनि, 114 आर्यिकाएँ, 20 ऐलक, 14 क्षुल्लक, 4 क्षुल्लिकाएँ सहित कुल 216 लोगों ने दीक्षा प्राप्त की थी।

'नवभारत' जबलपुर, 22 अगस्त 2004 से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UP/HIN/29933/24/1/2001-TC

डाक पंजीयन क्रं.-म.प्र./भोपाल/588/2003-05

सितम्बर 2004 | मासिक | वर्ष 3, अङ्क 8

जिनभाषित

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

◆

कार्यालय
ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल 462039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

◆

सहयोगी सम्पादक
पं.मूलचन्द लुहाड़िया
(मदनगंज किशनगढ़)
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ.श्रेयांस कुमार जैन, बडौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन, 'भारती', बुरहानपुर

◆

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कँवरीलाल पाटनी
(मे.आर.के. मार्बल्स लि.)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

◆

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कालोनी,
आगरा-282002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2151428,
2152278

◆

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	500 रु.
वार्षिक	100 रु.
एक प्रति	10 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

		पृष्ठ
❖ सम्पादकीय	: क्षमावाणी पर्व बनाम विश्वमैत्री	3
❖ प्रवचन	: दयोदय तीर्थ में उद्बोधन	
	: आ. श्री विद्यासागर जी	5
	: साधु कभी किसी का बुरा नहीं चाहते	
	: मुनि श्री सुधासागर जी	आ.पृ. 3
❖ लेख		
◆ संयमासंयम औदयिक भाव नहीं	: मुनि निर्णयसागर जी	7
◆ जैन संस्कृति के विकास में	: डॉ. नरेन्द्र जैन 'भारती'	9
◆ विचार करें इस चातुर्मास में	: डॉ. ज्योति जैन	10
◆ दशलक्षण पर्व और तत्त्वार्थसूत्र	: पं. सनतकुमार विनोदकुमार	11
◆ क्षमा धर्म ही नहीं, दवा भी है	: डॉ. प्रेमचन्द जैन	14
◆ ऊँच गोत्र का व्यवहार कहाँ?	: पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार	18
◆ प्रतिष्ठाशास्त्र और शासनदेव	: पं. मिलापचन्द कटारिया	22
❖ जिज्ञासा- समाधान	: पं. रतनलाल बैनाड़ा	24
❖ संस्मरण		
◆ असीम-वात्सल्य	: मुनिश्री क्षमासागर जी	8
❖ भजनअर्थ		
◆ कविवर भागचन्द रचित भजन	: पं. सुनील जैन शास्त्री	27
❖ म.प्र. अल्पसंख्यक आयोग द्वारा लिखा पत्र	: मो. इब्राहिम कुरैशी	28
❖ बाल वार्ता		
◆ जीना है तो पीना नहीं	: डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन	26
◆ विद्या का घड़ा	: डॉ. जगदीश चन्द जैन	21
❖ कविता		
◆ नवीन मुनिदीक्षाओं के संदर्भ में	: मुनि श्री चंद्रसागर	2
◆ त्याग बनाम भोगवाद	: धर्मचन्द जैन बाझल्य	2
◆ हम वृद्धों को बोझ न समझें	: मनोज जैन 'मधुर'	4
❖ समाचार		31-32
◆ आवेदन पत्र : स्वतंत्रता संग्राम में जैन		30
◆ दयोदय धाम में धर्म पथ पर धन्य कदम		आ.पृ. 2

लेखक के विचारों से सम्पादक को सहमत होना आवश्यक नहीं है।
जिनभाषित से सम्बन्धित विवादों के लिए न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवीन मुनिदीक्षाओं के संदर्भ में कविताएं

मुनि श्री चंद्रसागर

1

ये
पढ़े-लिखों
की भीड़,
नीड़
को छोड़कर
भाग निकली,
अब
बहायेगी
वैराग्य का
नीर,
ये
पढ़े लिखों
की भीड़

2

तटपर
खड़ा
कोई बेचारा,
रहा
सुखा कपड़े,
जोर जोर से
वर्षा हुई,
चला
झंझावात,
था सो
दिगम्बर
हो गया

त्याग बनाम भोगवाद

इजी. धरमचन्द्र जैन बाझल्य

दुनिया ने जो पहनाये थे कब से दिये हैं उन्हें उतार।
त्यागा घर परिवार तभी से त्यागे उनने भोग अपार॥

घर त्यागा है जबसे प्रभु ने ग्रहण किया मठ पर अधिकार।
त्याग न पाये मूर्छापरिग्रह मन से बंधा हुआ संसार॥

मंथन खूब किया आगम का करते निज पर का उद्धार।
सबको दिखते निर्विकार पर भीतर चलता है व्यापार॥

सफल हुए है संत शिरोमणी ख्याति लाभ हित धर्म प्रचार।
श्रावक दबे बोझ से उसके चैनल पर चल रहा प्रचार॥

ऊपर चढ़ते नीचे गिरते बालकवत् रहते अविकार।
स्थिर होकर पुनः भटकते क्योंकि अगल नहीं संसार॥

देश दोष है, काल दोष है, है परिवर्तित चर्या स्वीकार।
महावीर की वाणी है यह उसे बनाया आस्रव द्वार॥

ए-92 शाहपुरा, भोपाल-462039

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

क्षमावाणी पर्व बनाम विश्वमैत्री

मनुष्य सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी है क्योंकि उसमें ही विवेक सम्मत जीवन जीने की शक्ति है, जिसका उपयोग करके वह पतित से पावन एवं नर से नारायण बन जाता है। संसार के घटते घटनाचक्रों के बीच भी मनुष्य अपना सन्तुलन बनाये रखता है और प्रगति की धुरी को नवजीवन प्रवाह के पहियों से आबद्ध किये रहता है, फिर भी ज्ञात- अज्ञात कारणों से कुछ भूलें सहज ही उससे हो जाती हैं जिनका निदान वह स्व-आलोचना, प्रायश्चित और क्षमायाचना या क्षमाभाव के माध्यम से करता है। हमारी आत्मा हमें सतत् प्रेरणा देती है कि भूल हो जाने पर भी क्या वही भूल करोगे? भूल होना सहज है और इनसानी स्वभाव भी, किन्तु जानबूझकर भूल करना और भूल पर भूल करना तो नादानी है। वास्तव में जिस क्षण हमें अपनी भूल मालूम हुई यदि उसी क्षण हम उसे भूल मानकर भूलने, भुलाने और कभी न दोहराने का संकल्प लेते हैं तो यह हमारा पुनर्जन्म ही है। यदि भूल करना मनुष्य का स्वभाव है, तो भूल को मान लेना उसकी मनुष्यता है और जिसके प्रति भूल हुई है या जिसे हमारी भूल से नुकसान हुआ है, उसके मन में आयी विकृति का निवारण कर देना पुरुषार्थ है और यह पुरुषार्थ बिना क्षमायाचना एवं क्षमाभाव धारण किये संभव नहीं है। प्रसिद्ध नीतिकाव्य 'तिरुक्कुरल' कहता है कि - 'दूसरे लोग तुम्हें हानि पहुँचायें, उसके लिए तुम उन्हें क्षमा कर दो और यदि उस उपकार को भूल सको तो और भी अच्छा है।' उपवासादि तपश्चरण के द्वारा शरीर को कृश करने वाले तपस्वी महान होते हैं, किन्तु उनका स्थान उन क्षमाशील सज्जनों के पश्चात् ही है जो अपनी निन्दा करने वालों को क्षमा कर देते हैं। हमें सदैव स्मरण रखना चाहिए कि-

नीच बन जाता है इन्सां सजाएं देकर।
जीतना चाहिए दुश्मन को दुआएं देकर॥

दिगम्बर जैन समाज में दशलक्षण पर्व के उपरान्त आश्विन कृष्ण-1 को क्षमावाणी पर्व मनाने तथा श्वेताम्बरों में पर्युषण पर्व के उपरान्त सांवत्सरी मनाने की परम्परा है, जिसे हम विश्व क्षमापना दिवस भी कहते हैं। इस दिन सभी नर-नारी वर्ष भर में की हुई भूलों के प्रति मन-वचन-काय से क्षमायाचना करते हैं। अपने मन की कलुषता को धोते हैं, अहिंसा तथा सहअस्तित्व की भावना को पुष्ट करते हैं। इस क्षमाभाव से प्राणीमात्र के जीवन की 'गारन्टी' मिल जाती है। आज समाज को उसके मूलभाव 'सहकार' की ओर वापिस आने की आवश्यकता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' के स्वर के साथ बाजारवाद ने भले ही वसुधा को सिकोड़ दिया हो, किन्तु कुटुम्ब की भावना का विकास अभी नहीं हो पाया है। यद्यपि परिवार, पर्यावरण, स्वास्थ्य और अस्तित्व की चिंताएँ समान हैं, किन्तु स्वार्थ के वशीभूत होकर हम अपनी- अपनी का राग अलापते हैं। अमेरिका विश्वशक्ति है, तो उसके लिए अपने हितों की चिन्ता सर्वोपरि है, किन्तु दूसरे देशों की चिन्ता उसके लिए मात्र अपने हितपूर्ति तक ही संभव हो पाती है। आतंकवाद आज अमैत्री भावना का पर्याय है जिसका लक्ष्य है स्वयं के लिए दूसरों को मारो। वे सहअस्तित्व की भावना के तो हत्यारे हैं ही, दूसरों का अस्तित्व मिटाने पर ही तुले हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह जैसे पाप उनके लिए ग्राह्य हैं। वे स्वयं की सदभावनाओं के तो हत्यारे हैं ही, दूसरों को मारने के लिए, स्वयं को मारने (मानव बम बनने) तक के लिए भी तत्पर हो जाते हैं। उनकी हिंसा एवं प्रति हिंसा की भावना एवं दुष्कृत्य निन्दनीय हैं, जो दण्ड की मांग करते हैं, किन्तु जब वे ही शान्ति के स्वरों को बोलने लगते हैं, तो अनेक देश/शासनाध्यक्ष/सरकारें उन्हें भी क्षमाकर समाज की मुख्यधारा से जुड़ने के सुअवसर प्रदान करती हैं। वास्तव में संघर्ष का हल शान्तिमय संवाद ही है जिसके कारण व्यक्ति आत्मसुधार करता है। क्यों न हम भी अपनी भूलों का चिन्तन करें और यह संकल्प करें कि हम ऐसा कोई कार्य या विचार नहीं करेंगे जिसमें क्षमा एवं शान्ति का संसार दुःख के सागर में डूबे। हमारी भावना हो कि-

खम्मामि सव्व जीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्व भूएसु वैरं मज्झं ण केण वि॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् मैं सभी जीवों को क्षमा करता हूँ, सभी जीव मुझे क्षमा करें। मेरी सभी प्राणियों से मित्रता है, मुझे किसी से वैर नहीं है।

इस प्रकार की भावना रखने वाला प्राणी स्वयं का सबसे बड़ा मित्र है और उसी से विश्व मैत्री की अपेक्षा की जा सकती है। मनुष्य परिस्थितियों को अपने पक्ष में मोड़ सकता है। वह चाहे तो विसंवाद को संवाद में बदल सकता है, किन्तु यह बिना क्षमा के संभव नहीं है। हमें यही क्षमा उपादेय है।

डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन भारती,
एल-65, न्यू इंदिरा नगर, बुरहानपुर (म.प्र.)

हम वृद्धों को बोझ न समझें

मनोज जैन ''मधुर''

1

हम वृद्धों को बोझ न समझें
वृद्ध हमारी शान हैं।
ये समाज का होते गौरव,
यही राष्ट्र के प्राण हैं।

2

महाबली से युद्ध लड़ा था,
जब तक थीं तन में कुछ सांसें।
पक्षीराज ने पथ रोका था,
फैला अपनी बूढ़ी पाँखें।
बूढ़ी छाती ने झेला था
अर्जुन के सर संधानों को।
प्रण की खातिर त्याग दिया था,
हँसते-हँसते निज प्राणों को।
मानसरोवर के हंसों सम,
क्षीर-नीर प्रतिमान हैं।

3

हम भी बनकर श्रवण सरीखे,
इनके चरणों को चूमें।
मन की कांवर में बैठाकर,
इनको तीरथ-तीरथ घूमें।
सेवाकर अपनी सेवा के
आओ हम बीजांकुर रोपें।
भारत की इस परम्परा को
मिलकर नवपीढ़ी को सौंपे।
करें वंदना उठकर इनकी
इनके पुण्य महान हैं।

4

चलतीं फिरतीं प्रतिमाओं को,
घर मन्दिर में चलो सजायें।
अवसादों को दूर करें हम,
इनके घावों को सहलायें।
जीते जी गर बाँट सकें तो,
इनकी पीड़ाओं को बाँटें।
अन्तर जो पश्चिम से आया,
मिलकर उस अन्तर को पाटें।
पितरों को भी अर्घ समर्पित
करता हिन्दुस्तान है।

सी/एस-13, इन्दिरा कालोनी, बाग उमराव दूल्हा, भोपाल-10

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दयोदय तीर्थ में आचार्य श्री विद्यासागर जी के उद्बोधन

14 अगस्त 2004, दयोदय घाट

सिद्ध व्यक्ति को मंत्र सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं

जिसका मन सिद्ध है उसे मंत्र सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि उसका प्रत्येक शब्द मंत्र का कार्य करता है। और जिसका मन सिद्ध नहीं है, वह मंत्र सिद्ध करता है, तो स्वयं को घातक सिद्ध होता है। स्थिर मन ही मंत्र है और अस्थिर मन स्वच्छंद है। इसलिए सबसे पहले मन को शुद्ध बनाना चाहिए, तभी मंत्र कार्यकारी सिद्ध होता है।

अपराधी क्रूरता के साथ अपराध करता है। इसका अर्थ यह नहीं कि उसे दंड भी क्रूरता के साथ दिया जाये, बल्कि उसे दंड अपराध को छोड़ दे, इस प्रकार देना चाहिए। जज कभी क्रोध के साथ निर्णय नहीं देता, बल्कि वह जिस कलम से निर्णय देता है, उस कलम को भी तोड़कर अलग कर देता है, ताकि उससे दूसरी बार कुछ लिखा न जा सके। उन्होंने आगे कहा कि गाड़ी को वेग देना आसान है, लेकिन जब वह वेग में आ जाती है, तब उसे संभालना आसान नहीं होता। ठीक उसी प्रकार बुरे कर्म करना आसान है, लेकिन जब इन कर्मों को भोगना पड़ता है तब बहुत सावधानी रखनी पड़ती है।

16 अगस्त 2004, दयोदय घाट

धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए अपने विचार और आचार को भी मजबूत करें

अहिंसा आत्मा की खुराक है। हमें स्वतंत्र हुए तो वर्षों हो गए, लेकिन आज भी अहिंसा, जीवदया के क्षेत्र में विकास नहीं हो रहे हैं। धरती पर सात्विक जीवन जीने वालों की संख्या में कमी नहीं है। अहिंसा के लिये सर्वस्व समर्पित कर संगठित प्रयास होने चाहिए। जीवन देने के लिए तत्पर रहने की आवश्यकता है। धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए अपने विचार और आचार को भी मजबूत करना होगा। धर्म केवल बातों और विचारों से सार्थक नहीं होता। उसके लिए बातों के साथ विचारों पर भी अमल करना होगा।

पार्थिव शरीर को चलाने के लिए पहले चरण में दाना-पानी और दूसरे चरण में आवास की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार पक्षियों को भी जीवनयापन के लिए दाना-पानी और दूसरे चरण में आवास की आवश्यकता होती है। दाना-पानी के लालच में वह स्वतंत्र उड़ान भरते हुए सामूहिक रूप से बंधन को प्राप्त हो जाते हैं, लेकिन एक बुजुर्ग कबूतर के अनुभव से संगठित प्रयास कर वह जाल सहित आसमान में उडान भर लेते हैं और एक चूहे मित्र की मदद से वह जाल से मुक्त हो जाते हैं। इसी प्रकार सभी लोग स्वतंत्रता चाहते हैं। लोग आसमान में उड़ना चाहते हैं, पर बल नहीं मिलता, लेकिन एक साथ यदि शक्ति का प्रयोग किया जाता है, तो निश्चित रूप से सफलता मिलती है। जिस प्रकार पक्षियों ने एकजुट संगठित होकर अपने को मुक्त कराया, उसी प्रकार अहिंसा के लिए हम सभी को एकजुट होने की आवश्यकता है। स्वतंत्रता का अर्थ एक साथ काम करके तात्कालिक संकट से मुक्ति पाना है। आप यदि स्वयं का त्याग और समर्पण नहीं करते, तो आपका त्याग, त्याग के क्षेत्र में संभव नहीं है। मूक निरीह पशुओं पर आजादी के बाद अत्याचार बढ़े हैं। देश में कत्लखानों की संख्या में वृद्धि हुई है। पहले पशुओं के माध्यम से यह राष्ट्र समृद्ध बना, लेकिन अब ऐसा वक्त आया कि पशुओं का वध ज्यादा हो रहा है। पशु मुख से कह नहीं पाते, लेकिन वह कार्य कर सकते हैं, श्रावकों की तरह। इनके पास योग्यता है, दो हाथ, दो पैर वाला ही श्रावक हो, ऐसा नहीं है। पौराणिक कथाओं में भी इसका वर्णन है। यदि एक जीव की भी आपने प्राण की रक्षा की, तो अहिंसा का लक्ष्य पाने में सफलता मिलेगी। हम अपनी पीड़ा के लिए रोते हैं, लेकिन दूसरे की पीड़ा को देखकर हमारी आँखें सूख जाती हैं। जबकि हमें स्व के साथ पर का भी ध्यान रखना चाहिए। वैज्ञानिकों ने शोध में यह साबित किया है कि बूचड़खानों में पशुओं की प्रताड़ना-वेदना के कारण ही भूकंप जैसी प्राकृतिक आपदायें आती हैं।

जीवदया के क्षेत्र में उमाभारती के कार्य सराहनीय

तिलवाराघाट में आचार्य श्री विद्यासागर जी ने मध्यप्रदेश की मुख्यमंत्री सुश्री उमाभारती के द्वारा जीवदया के क्षेत्र में किये जा रहे सार्थक प्रयासों की सराहना करते हुए कहा कि देश का यह पहला प्रदेश है, और वह ऐसी पहली मुख्यमंत्री हैं जिन्होंने नि:शक्त पशुओं को सरंक्षण देने की दिशा में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभावी कदम उठाये हैं। जीवदया के क्षेत्र में उनके द्वारा निरंतर जो कार्य किए जा रहे हैं, उसके लिए उनके साथ मेरा आशीर्वाद सदैव है। गौरतलब है कि विगत 14 अगस्त शनिवार को जब मुख्यमंत्री सुश्री उमाभारती दयोदय तीर्थ में आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज से चर्चा और आशीर्वाद के लिये गयीं थीं, उस वक्त आचार्य श्री साधना में लीन थे, जिस कारण मुख्यमंत्री उनसे चर्चा नहीं कर पाई थीं। आज रविवार को प्रवचनों के दौरान आचार्यश्री ने कहा कि वह जो कहने आईं थीं, मैं समझ गया हूँ। उनके शासनकाल में पशुओं को जो स्वतंत्रता मिली है, वह सराहनीय है। उनके विचार बहुत ही सराहनीय हैं। रात-दिन एक करते हुए जीव रक्षा के क्षेत्र में व्यस्तता के बावजूद कार्य कर रही हैं। वह केवल चर्चा ही नहीं करतीं, उस चर्चा को अर्चा में भी बदलती हैं। जो ठान लेती हैं, करती हैं। उनके पास कार्य करने की क्षमता है, लेकिन उन्हें आप सभी के सहयोग की आवश्यकता है। मुख्यमंत्री की बात मान लें और जीव दया के क्षेत्र में अपनी आहुति भी देना पड़े, तो तैयार रहें, क्योंकि यह जिंदगी की रक्षा का सवाल नहीं, धर्म संस्कृति की रक्षा का प्रश्न है और इसके लिए स्वार्थ नहीं परमार्थ की ओर कदम उठाने होंगे। पशुसंवर्धन बोर्ड का निर्माण उन्होंने किया है। वह उस संबंध में चर्चा और मार्गदर्शन चाहती थीं। वह एक कार्यकर्ता की भाँति अपने कार्य में तत्पर हैं। कार्यकर्ता को कहने की आवश्कता नहीं होती। वह जिस दिशा में हैं, मैं उन्हें आशीर्वाद देता हूँ। लेकिन यह एक सामूहिक काम है और सभी का सहयोग उन्हें चाहिए, क्योंकि यह लोकतंत्र है राजतंत्र नहीं। आचार्य श्री ने कहा कि पचास वर्षों में अहिंसा के क्षेत्र में बहुत कम विकास हुआ है। मध्यप्रदेश की ही तरह गुजरात, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, कर्नाटक में यह बात उठे, कार्य प्रारंभ हो, तभी बात लोकसभा और राज्यसभा तक पहुँच सकती है।

राष्ट्रपति ने प्रस्तुत किया करुणा का एक प्रेरणास्पद जीवन्त उदाहरण

यह तो हम सभी जान ही चुके हैं कि भारतवर्ष के राष्ट्रपति, प्रसिद्ध अणु विज्ञानी महामहिम एपीजे अब्दुल कलाम शुद्ध शाकाहारी हैं तथा सर्वधर्म समभाव का उनका वैज्ञानिक एवम् मानवीय दृष्टिकोण है, परन्तु क्या आपको पता है कि किस प्रकार वे एक पक्षी की पीड़ा को देखकर अधीर हो गए तथा संवेदनशीलता के तारों ने उन्हें बुरी तरह झकझोर दिया।

घटना राष्ट्रपति भवन की है। वे प्रतिदिन की तरह मुगल गार्डेन की सैर कर रहे थे कि अचानक उनकी नजर एक मोर पर पड़ी जिसका मुँह खुला हुआ था, जिसकी वजह से उसकी दाईं आँख ठीक से खुल नहीं रही थी। आमतौर पर मोर मुँह खुला नहीं रखता। राष्ट्रपति जी मोर के करीब गए, तो देखा कि मोर के दाईं तरफ एक बड़ा सा फोड़ा है और मोर पीड़ा की वजह से मुँह बन्द नहीं कर पा रहा है। उसकी दयनीय स्थिति ने राष्ट्रपति को व्यथित कर दिया। उन्होंने मोर को अपनी गोद में उठाया तथा अपने अंगरक्षक को तत्काल चिकित्सक बुलाने को कहा। संदेश मिलते ही चिकित्सक मेजर वाई सुधीर कुमार आ पहुंचे। तत्पश्चात मोर को लेकर, स्वयं, राष्ट्रपतिभवन स्थित मिलिट्री वेटनरी अस्पताल गए। वहां चिकित्सकों का एक दल तुरंत काम पर जुट गया। जांच से पता चला कि मोर का वह फोड़ा कैंसर का फोड़ा है।

कैंसर से ग्रस्त मोर का 3 जून को आपरेशन किया गया। आपरेशन करीब ढ़ाई घण्टे चला तथा 3 गुणा 4 सेंटीमीटर का ट्यूमर निकाला गया। बाद में मोर को राष्ट्रपति भवन स्थित बॉयोड्राइवरसिटि पार्क में अन्य पक्षियों के बीच छोड़ दिया गया। राष्ट्रपति डॉ. कलाम अपने अधिकारियों के माध्यम से बराबर उस मोर की जानकारी लेते रहे। 5 जून को जब मोर ने अन्न का दाना ग्रहण किया और पानी पीकर अपनी प्यास शांत की, तब जाकर राष्ट्रपति जी निश्चिंत हुए।

यह हैं हमारे लोकप्रिय राष्ट्रपति जी के संवेदनशील हृदय का एक प्रेरणादायी वाकया, जो हम सबके दिलों को गहराई तक छूता है और हम सबको अहिंसा एवम् करुणा की सिर्फ बातें न करके, सक्रिय होने का आह्वान करता है।

चीरंजीलाल बगड़ा
महामंत्री भारतीय अहिंसा महासंघ, कोलकाता

इच्छा सीमित होते ही अंतर जगत का चौमुखी विकास प्रारंभ हो जाता है।
सुनीतिशतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयमासंयम औदयिक भाव नहीं

मुनि निर्णयसागर जी

संयमी जब चर्चा करता है, तो उसकी चर्चा सत्य महाव्रत और भाषा समिति से युक्त हुआ करती है। संयमी असत्य से परे रहकर हित-मित-प्रिय शब्दों में अपनी बात श्रोताओं के सामने रखता है। उसे आगम और गुरु की आज्ञा कहीं उल्लंघन न हो जाये, इस बात का सदैव भय रहता है। अर्थात् पाप भीरू होता है। संयमी, पूर्व आचार्यों एवं सच्चे शास्त्रों का अवलंबन लेकर, अपनी चर्चा को आदि से प्रारंभ कर, अंत तक चलता है। जबकि एक असंयमी, जिसका न सत्य व्रत होता है, न ही भाषा समिति। कभी भी अपने सांसारिक स्वार्थवश किसी के भी साथ कुछ भी शब्द प्रयोग कर सकता है। असंयमी का कोई भरोसा नहीं हो सकता है, किन्तु सभी असंयमी समान नहीं हुआ करते हैं। अपितु वह भी पाक्षिक श्रावक हो सकते हैं आज्ञा सम्यक्त्वी हो सकते हैं। उनको भी देव, शास्त्र और गुरु की आज्ञा भंग का भय हो सकता है। इसलिए यहां उन असंयमी की बात नहीं की जा रही है, जो देवशास्त्रगुरु के आज्ञापालक हैं, अर्थात् सम्यक्दृष्टि हैं। मैं तो उन चंद शास्त्र पढ़ने वालों की बात कर रहा हूँ, जो अपने आपको सम्यक्दृष्टि मानते हैं। स्वयं को आगम के सूक्ष्म से सूक्ष्म रहस्य का जानने वाला मानते हैं। जिनकी दृष्टि में हर साधु द्रव्य लिंगी ही दिखाई देता है। जबकि पंचमकाल में पंचमकाल के अंत तक चतुर्विध संघ (मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका) के अस्तित्व का स्पष्ट उल्लेख है। यहाँ मुनि का अभिप्राय भावलिंगी मुनि से ही है। किन्तु इतना अवश्य है कि वर्तमान में शिथिलाचारी त्यागी व्रती का बाहुल्य तो दिख रहा है, परंतु सभी शिथिलाचारी (पथभ्रष्ट त्यागी) नहीं हो सकते हैं। अन्यथा आगम का उल्लेख सत्य सिद्ध नहीं होगा। वास्तव में साधु का दिखाई तो द्रव्य लिंग ही देता है। वह असंयमी लोग द्रव्य लिंग को देखकर यह कैसे देख लेते हैं कि इनके भावलिंग का नियमत: अभाव है। जबकि भावलिंग प्रत्यक्ष ज्ञानी का विषय बनता है। दर्शनार्थी को तो चरणानुयोग की दृष्टि से ही साधु को नापना चाहिए। यदि आरंभ परिग्रह नहीं है, तो वह साधु है। किन्तु, अपने को सम्यक्दृष्टि मानने वाले यह भी नहीं जानते, कि साधु के लिये श्रावक कैसे परीक्षा करे, कैसे देखे, चरणानुयोग अनुसार देखना चाहिए अथवा करणानुयोग के अनुसार? इस प्रकार के व्यक्तियों की ही ये धारणा है कि संयमासंयम औदयिक भाव कैसे है? तो उत्तर दिया गया संयमासंयम प्रत्याख्यानावरण चतुष्क (क्रोध, मान, माया, लोभ) के उदय से होता है। जैसा कि पूर्व में हमने कहा था, असंयमी कुछ भी कह सकता है, उसके न झूठ का त्याग होता है और न ही भाषा समिति का नियम। दूसरी बात "किसी का हाथ पकड़ा जा सकता है, मुँह नहीं।" यह कहावत यहाँ चरितार्थ होती दिखाई दे रही है। साथ में सिद्धांत के स्थूल ज्ञान का अभाव भी दृष्टिगोचर होता है।

यदि संयमासंयम प्रत्याख्यानावरण चतुष्क के उदय से ही होता है, तो नीचे भी प्रत्याख्यानावरण चतुष्क का उदय पाया जाता है। वहाँ पर भी संयमासंयम भाव होना चाहिए। तभी सही न्याय माना जाएगा। तभी यह संयमासंयम का लक्षण बन पायेगा। अन्यथा अन्याय होगा, साथ में अव्याप्ति नामक सदोष लक्षण होगा। तथा संयमासंयम को कहने वाला वक्ता सुधी श्रोता श्रावकों की दृष्टि में हास्य का पात्र बनेगा। यह तो हुआ न्याय और युक्ति का विषय। अब थोड़ा उस ओर भी दृष्टि ले चलते हैं जहां पूर्व आचार्यों ने संयमासंयम के संबंध में जिनेन्द्र आज्ञानुसार कुछ कहा है। ऐसे षट्खंडागम, गोम्मटसार, तत्त्वार्थसूत्र आदि महान शास्त्रों में संयमासंयम को क्षयोपशम भाव ही कहा, न कि औदयिक भाव। तत्त्वार्थसूत्र में पूज्याचार्य उमास्वामी जी कहते हैं-

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदा: सम्यक्त्वचारित्र संयमासंयमाश्च ॥ 5 ॥ अध्याय-2 ॥

आगम में सर्वत्र जीव के पाँच प्रकार के असाधारण भाव कहे हैं। असाधारण इसलिए कि वह जीव में ही पाये जाते हैं, अन्य द्रव्यों में नहीं। औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक इन्हीं पाँच भावों के उत्तर भेद क्रमश: 2, 9,18, 21, 3 इस प्रकार 53 भाव कुल मिलाकर होते हैं।

चर्चा के प्रसंग में भावों की परिभाषा बनाकर चलना उचित होगा। परिभाषा के अभाव में किसी भी बिन्दु पर चर्चा सार्थक नहीं होती है।

1. जो भाव कर्मों के उपशम से प्रकट होते हैं, वह औपशमिक भाव कहलाते हैं। औपशमिक सम्यक्त्व, चारित्र।

2. जो भाव कर्मों के क्षय से उत्पन्न होते हैं, वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षायिक भाव कहे जाते हैं। क्षायिक सम्यक्त्व, चारित्र, ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य।

3. जो भाव कर्मों के क्षयोपशम से प्रकट होते हैं वह क्षायोपशमिक भाव कहलाते हैं। मतिज्ञान आदि।

क्षयोपशम :

वर्तमान में उदय होने वाले सर्वघाती स्पर्द्धकों का उदयाभावी क्षय, देशघाती स्पर्द्धकों का उदय तथा आगामी काल में उदय आने वाले स्पर्द्धकों का सद्वस्था रूप उपशम क्षयोपशम कहलाता है। मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय ज्ञान, कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ज्ञान, चक्षु, अचक्षु, अवधिदर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, सम्यक्त्व, चारित्र, संयामासंयम।

4. जो भाव कर्मों के उदय से होता है, वह औदयिक भाव कहलाता है। चार गति, चार कषाय, तीन लिंग, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयत, असिद्धत्व, छ: लेश्या।

5. जो भाव कर्मों के उपशम, क्षय आदि की अपेक्षा के बिना ही होते हैं। वह पारिणामिक भाव कहलाते हैं। जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व।

इस प्रकार 53 भावों के संदर्भ में जानने से स्पष्ट हो जाता है कि पूर्व आचार्यों ने संयमासंयम को क्षयोपशम भाव के अठारह भेदों में रखा है। न ही औपशमिक, क्षायिक भावों में और न ही औदयिक, पारिणामिक भावों में।

सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ में महान आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी ने संयमासंयम किन कर्मों के क्षयोपशम से किस प्रकार उत्पन्न होता है, उसका उल्लेख इस प्रकार किया है :

1. अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ के सर्वघाती स्पर्द्धकों का उदयाभावी क्षय तथा संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ के देशघाती स्पर्द्धकों का उदय और आगामी काल में उदय आने योग्य सर्वघाती स्पर्द्धकों का सद्वस्था रूप उपशम होने पर संयमासंयम अर्थात् देश संयम उत्पन्न होता है।

उपरोक्त युक्ति और आगम प्रमाणों के उपरांत संयमासंयम की मीमांसा में कुछ कहना शेष नहीं रह जाता है। मुझे आज कोई भी इस प्रकार का आगम कहीं भी पढ़ने को नहीं मिला जहां संयमासंयम को औदयिक सिद्ध किया गया हो, फिर क्यों इस संदर्भ में लोग हठाग्रह करते हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि कर्मोदय की तीव्रता के कारण स्वयं संयमी, देश संयमी (संयमासंयमी) बनने का पुरुषार्थ नहीं कर पा रहे हैं, इसलिए ''अंगूर खट्टे हैं'' इस कहावत को तो चरितार्थ नहीं कर रहे हैं।

संस्मरण

असीम-वात्सल्य

मुनि श्री क्षमासागर जी

सारा संघ मुक्तागिरि की ओर जा रहा था। सुबह का समय था। सभी ने सोचा कि समीपस्थ मोर्सी ग्राम तक विहार होगा, सो आसानी से चलकर नौ-दस बजे तक पहुँच जाएँगे। जब दस बजे हम मोर्सी गाँव पहुँचे तो मालूम पड़ा आचार्य महाराज लगभग आधा घंटा पहले यहाँ से निकल गए हैं।

सचमुच, आचार्य महाराज अतिथि हैं। कब/कहाँ पहुँचेंगे, कहा नहीं जा सकता। उनका यह अनियत विहार कठिन भले ही है, लेकिन बड़ा स्वाश्रित है। विहार की बात पहले से कह देने में दो मुश्किलें खड़ी हो जाती हैं। यदि किसी कारण निर्धारित समय पर विहार न कर पाए तो झूठ का दोष लगा और जब तक विहार नहीं किया तब तक विहार का विकल्प बना रहा। इससे अच्छा यही है कि क्षण भर में निर्णय लिया और हवा की तरह नि:संग होकर निकल पड़े। आगे क्या होगा इसकी जरा भी चिंता नहीं है। यही तो निर्द्वन्द्व साधना है।

हम सभी आचार्य महाराज का अनुकरण करते हुए आगे बढ़ने लगे। गंतव्य दूर था। सामायिक से पहले पहुँचना संभव नहीं था, सो रास्ते में एक संतरे के बगीचे में सामायिक के लिए ठहर गए। सामायिक करके हम लोग लगभग ढाई-तीन बजे अपने गंतव्य पर पहुँचे। आचार्य महाराज के चरणों में प्रणाम किया। वे हमारी स्थिति से अवगत थे, सो अत्यन्त स्नेह से बोले-'थक गए होंगे, थोड़ा विश्राम कर लो, अभी आहार-चर्या के लिए सभी एक साथ उठेंगे।'

हम समझ गए कि आचार्य महाराज स्वयं समय से आ जाने पर भी आहार-चर्या के लिए हम सब के आने तक रुके रहे। उनके इस असीम वात्सल्य का हम पर गहरा प्रभाव हुआ, जो आज भी है।

'आत्मान्वेषी' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनिदीक्षा 25 सितम्बर पर विशेष

जैन संस्कृति के विकास में मुनि श्री सुधासागर जी का योगदान

डॉ. नरेन्द्र जैन 'भारती'

भारतवर्ष में समय-समय पर अनेक श्रमण संतों ने जन्म लेकर सम्पूर्ण मानव समाज का दिशा निर्देशन किया है। सत्य तथा अहिंसा का सम्यक् परिपालन करते हुए देह को तप, साधना में लगाकर मोक्षमार्ग पर निरन्तर अग्रसर रहे हैं। परमपूज्य मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज वर्तमान में ऐसे ही महान तपस्वी, साधक संत तथा जिनवाणी के प्रचार-प्रसार में सतत् जागरूक श्रमण संत हैं। जिनकी वाणी में अमृत, साधना में तप तथा आत्म नियन्त्रण में संयम की सर्वोच्च भावना का दर्शन मिलता है।

परमपूज्य आचार्य रत्न श्री विद्यासागर जी महाराज से मुनिदीक्षा ग्रहण कर उनके सम्यक् दिशा निर्देशों का पालन करते हुए पूज्य मुनिवर श्री सुधासागर जी महाराज ने अनेक अविस्मरणीय कार्य कर महान ख्याति तो अर्जित की है, परन्तु श्रमण परम्परा के सच्चे मार्ग से कभी नहीं भटके, कभी भी नियमित स्वाध्याय, सामायिक तथा मुनिचर्या को नहीं छोड़ा न शिथिलता आने दी। मध्यप्रदेश के ईसुरवारा नामक स्थान पर जन्म लेकर पिता श्री रूपचंद जी तथा माता श्रीमती शांति देवी के पवित्र आंगन को अपने जन्म से पूर्णता शुद्ध तथा पावन बनाकर घरवालों की प्रसन्नता को तो आपने बढ़ाया ही, श्रमण मुनि दीक्षा धारण करने से पूर्व 10 जनवरी 1980 को क्षुल्लक दीक्षा, 15 अप्रैल 1982 को ऐलक दीक्षा के नियमों का पूर्णतया परिपालन कर आपने पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज को यह विश्वास दिलाया कि आपमें श्रमण परम्परा के अनुरूप मुनि दीक्षा ग्रहण करने की पूर्ण योग्यता है। 25 सितम्बर 1983 को आपके लिए मुनि दीक्षा दी तथा सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, शाकाहार तथा सदाचार के प्रचार-प्रसार हेतु सदैव तत्पर रहने का शुभाशीर्वाद प्रदान किया। तब से आज तक पूज्य मुनिवर सुधासागर जी महाराज के पावन चरण जहाँ भी पड़ते हैं, वहाँ जंगल में मंगल हो जाता है। पूज्य मुनिवर सच्चे देव, शास्त्र एवं गुरु के प्रति अपने जीवन को पूरी तरह से समर्पित कर तपस्या को आत्म कल्याण हेतु श्रेष्ठ साधन बना चुके हैं। भारतवर्ष की सम्पूर्ण जनता उनके चरण कमलों में नतमस्तक होकर स्वयं को गौरवान्वित महसूस करती है। उनके प्रवचनों से लाखों लोग अब तक मद्य, माँस, मधु तथा नशावर्धक वस्तुओं का त्याग कर चुके हैं। परमपूज्य मुनिवर श्री सुधासागर जी महाराज का श्रमण संस्कृति के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान है।

मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के प्रिय विषय हैं- तीर्थ जीर्णोद्धार, तीर्थ सृजन, सत्साहित्य का अध्ययन और प्रकाशन, शिक्षालयों का विकास, नैतिक शिक्षा को बढ़ावा तथा नि:शक्त जनों को संबल देना। विरासत का संरक्षण करना आपका परम ध्येय है। प्राचीन तीर्थों का जीर्णोद्धार कर आपने युवा पीढ़ी को जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। देवगढ़ तीर्थ का जीर्णोद्धार, अशोकनगर में त्रिकाल चौबीसी का निर्माण, सांगानेर के संघी जी मन्दिर का जीर्णोद्धार, रैवासा के जैन मन्दिर को भव्य रूप प्रदान करना, शताधिक गौशालाओं की स्थापना, विकलांगों को कृत्रिम अंग प्रदान करना तथा जगह-जगह सत्य, अहिंसा तथा सर्वोदयवाद के सिद्धांतों के प्रचार-प्रसार से श्रमण के विकास में महत्वपूर्ण योगदान आपके जीवन की महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं।

परमपूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज आत्म कल्याण के लिए जिनवाणी का सम्यक् ज्ञान होना आवश्यक मानते हैं। वे स्वयं तो जिनवाणी के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित हैं ही, प्रत्येक वर्ष शताधिक विद्वानों को, समाज को प्रेरित कर विचार-विमर्श पर बुलवाकर, किसी एक धर्म ग्रन्थ के विभिन्न विषयों पर सम्यक् विचार-विमर्श कर लोगों को गूढ़ से गूढ़ रहस्यों से परिचित कराने का सार्थक प्रयास भी करते हैं। प्रथम राष्ट्रीय विद्वत संगोष्ठी ललितपुर (उ.प्र.) में सल्लेखना पर, डॉ. रमेश चन्द जैन बिजनौर के संयोजन में, मुनिवर के सान्निध्य में आयोजित की गई। इसके उपरांत मदनगंज-किशनगढ़, जयपुर, मथुरा, सीकर, केकड़ी आदि अनेक स्थानों पर सैकड़ों विद्वानों की सहभागिता तथा समाज की उपस्थिति के मध्य तीन सत्रों में प्रतिदिन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोष्ठियों में विभिन्न विषयों पर विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने शोध पत्रों का वाचन किया। जिनकी विषद समीक्षा पूज्य मुनिश्री के द्वारा होती थी। जिसमें पूज्य क्षुल्लक गम्भीरसागर जी महाराज तथा पूज्य क्षुल्लक धैर्यसागर जी महाराज भी विभिन्न उद्धरण बताकर लोगों का मार्गदर्शन करते थे। एक ऐसी ही गोष्ठी अक्टूबर माह के प्रथम सप्ताह में श्रावकाचार पर सूरत में होने जा रही है, जिससे समाज के अनेक व्यक्ति लाभान्वित होंगे। श्रावक संस्कार शिविर, पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव, अनेक मण्डल विधानों का आयोजन तथा सांगानेर में मूर्तियों का निकालकर दर्शनार्थ जनता के समक्ष लाना, एक महान तपस्वी, संत के पुरुषार्थ का साक्षात्दिग्दर्शन कराते हैं। विद्वानों के प्रति पूर्ण वात्सल्य भी आपकी महत्वपूर्ण विशेषता है। आपकी चर्या ठीक इसी मार्ग का प्रतिबिम्ब जान पड़ती है-

देहे निर्ममता गुरोः विनयता नित्यं श्रुताभ्यासता
चारित्रोज्जवल मोहोपशमतां संसार निर्वेगता।
अन्तर्बाह्य परिग्रह त्यजनतां धर्मज्ञता साधुता,
साधो-साधुजनस्य लक्षणमिदं तद्वत्सचित्तोभवे॥

परमपूज्य मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज ज्ञान, ध्यान और तपस्या में रत रहकर हम सभी को मोक्ष का मार्ग निरन्तर दिखाते रहें, हमारे जीवन में सद् संस्कारों को विकसित करते रहें। उनकी चर्या तथा चर्चा का मार्गदर्शन पाकर हम सभी सच्चे मुनिधर्म के प्रति श्रद्धालु बनें, हमारा तनाव कम हो तथा हम सभी को 'सद्धर्मवृद्धिरस्तु' का आशीर्वाद सदैव प्राप्त होता रहे, यही पूज्य मुनिवर से कामना करते हैं।

सत्य, अहिंसा सदाचारमय जिनकी अमृतवाणी है।
ज्ञान, ध्यान का अतुलित बल जिनकी सानी है।
श्रमण परम्परा के मुनियों में जिनका नाम प्रथम है।
परम पूज्य मुनिसुधासागर जी को शत बार नमन है।

सनावद (म.प्र.)

विचार करें इस चातुर्मास में

डॉ. ज्योति जैन

चातुर्मास के चार माह साधु संघ, आर्यिका संघ, त्यागी वृन्द, वर्षायोग के लिए एक ही स्थान पर रहते हैं। इन चार महीनों में ज्ञान और धर्म की अविरल धारा बहती है। श्रमण संघ का यह समय स्वकल्याण का तो होता ही है साधना, चिन्तन, मनन का भी होता है। श्रावकों को भी उपदेश व चिन्तन से एक दिशा मिलती है। जरा विचार करें इस पहलू पर भी, जो पर्यावरण से संबंधित है। देखें - चातुर्मास के बढ़ते पोस्टर और उनकी बढ़ती साइज ने मानो चातुर्मास में एक अघोषित प्रतियोगिता रच डाली 'किसका कितना बड़ा पोस्टर।' मंहगे से मंहगा कागज, प्लास्टिक कोटेड और कहीं- कहीं तो प्लास्टिक से बने पोस्टर। प्लास्टिक से पर्यावरण को नुकसान होता है, यह तो सर्वविदित है ही। मंदिरों में भी बढ़ती पोस्टरों की संख्या में किसी भी पोस्टर को ज्यादा दिन का समय नहीं मिलता। चातुर्मास में प्रचार सामग्री की भी वृद्धि होती जा रही है। विभिन्न पोजों के भव्य चित्र, कैलेण्डर, पोलिथिन बैग, शॉपिंग बैग, डायरी, कीरिंग और भी न जाने कितने आइटम बनने और मुफ्त वितरण की प्रवृति दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। इसी तरह पोस्टर, बंदनवार और बड़े- बड़े होर्डिंग्स से चातुर्मास का पूरा क्षेत्र घिर जाता है। सोचिए? इन सब प्रचार सामग्री से पर्यावरण पर कितना असर पड़ता है। समस्त प्रचार सामग्री कट-फट कर धूल-धूसरित हो पुरानी पड़ बेकार हो जाती है। कहां तक मंदिर, संस्था के लोग संभाल कर रख पाते हैं। प्रचार सामग्री हानिकारक रसायनों से युक्त होती है। इसी तरह चातुर्मास की उपलब्धियों पर किताबों का छपना भी बहुत होने लगा है। मुफ्त में बँटने वाली इन कृतियों से घर का क्या मंदिरों की अल्मारियाँ भी भरती जा रही हैं। अत्यन्त दुःख तो तब होता है जब इन मुफ्त में वितरित कृतियों को अविवेकी श्रावक रद्दी वाले को बेच देते हैं। और जब रद्दी के रूप में इन्हें देखें तो? चातुर्मास में अहिंसा-पर्यावरण पर गोष्ठी, वादविवाद प्रतियोगिता, चित्रकला प्रतियोगिता आदि सम्पन्न होती हैं, पर पर्यावरण के इस पहलू पर सोचने की फुरसत किसे?.....

पोस्ट बाक्स-20, खतौली-251201 उ. प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दशलक्षणपर्व और तत्त्वार्थसूत्र

पं. सनतकुमार विनोदकुमार जैन

दशलक्षणपर्व प्रतिवर्ष हमें धर्म मार्ग में लगाने के लिये प्रेरित करने आता है। दशलक्षण धर्म आत्मा का स्वभाव है। इसके स्वरूप को समझकर व्यक्ति भावों की विशुद्धि प्राप्त करता है और अपना समय संयमाराधना में व्यतीत करता है। इन दिनों में सभी साधर्मीजन आरंभ आदि का त्याग कर संयम का पालन करते हुए इन्द्रिय विषयों से विरक्त रहते हैं। व्यक्ति जिस विषयासक्ति को वर्ष भर नहीं त्याग पाता उन्हें इन दिनों में सहजता से त्यागकर तन, मन, वचन को विशुद्ध बनाता है। ऐसी मानसिक विशुद्धि के समय किया गया आगम/सिद्धान्त ग्रन्थों का स्वाध्याय, विषय वस्तु को पूर्णरूप से गृहण कर अनुकरण का मार्ग प्रशस्त करता है। अत: मनीषियों ने दशलक्षणपर्व में तत्त्वार्थसूत्र नामक ग्रन्थ के स्वाध्याय की प्रेरणा दी, जिसका अनुसरण आज भी किया जा रहा है। दशलक्षणपर्व में तत्त्वार्थसूत्र का बहुत कुछ साम्य है। यह पर्व दश दिन का, दश इसमें धर्म हैं और तत्त्वार्थसूत्र में अध्याय भी दस हैं। अत: इन दिनों में एक धर्म के विवेचन के साथ एक अध्याय की विवेचना की जाती है। इन दिनों में व्यक्ति व्रत, संयम में संलग्न तो रहता ही है। पापों से विरक्त भी रहता है, जिससे उसके मन में आत्म कल्याण की भावना प्रबल हो जाती है। तत्त्वार्थसूत्र में जैनदर्शन को गागर में सागर की तरह समाहित किया गया है। इसमें मोक्षमार्ग और मोक्ष प्राप्ति का विस्तृत विवरण है। श्रद्धा, संयम और साधना से पवित्र मन, वचन और काय, आत्म हित की बात रुचिपूर्वक ग्रहण करते हैं। अत: इस तत्त्वार्थसूत्र का वाचन पर्व के दिनों में और भी आवश्यक हो जाता है। अन्य दिनों में तो हमें आत्म चिन्तन/आत्मकल्याण आदि को बिल्कुल समय ही नहीं मिलता है। सामान्य जन 365 दिन में मात्र दस दिनों में ही पूर्ण श्रद्धा के साथ विरक्त होकर धर्म कार्यों में लगता है। ऐसे समय में उसे सैद्धान्तिक ग्रन्थों का ज्ञान करना भी आवश्यक है। इसके लिये तत्त्वार्थसूत्र सम्पूर्ण ग्रन्थ है। इसमें लगभग सम्पूर्ण जैनागम के विषयों का प्रतिपादन किया गया है। अनेक ग्रन्थों के अध्ययन से जो ज्ञान प्राप्त होता है वह ज्ञान मात्र तत्त्वार्थसूत्र के अध्ययन से प्राप्त हो जाता है। इसमें सम्यग्दर्शन एवं उसकी प्राप्ति के कारण आदि के वर्णन के साथ सप्त तत्त्वों का विवेचन है। इसमें चारों अनुयोगों को भी समाहित किया गया है। जिसमें सम्यक् श्रुतज्ञान परमार्थ विषय का कथन करने वाले त्रेसठशलाका पुरुष सम्बन्धि पुण्यवर्धक, बोधि और समाधि को देने वाली कथाएं हों, वह प्रथमानुयोग है। इसमें आचार्यों ने पुण्य पुरुषों के चरित्र का वर्णन कर पापकर्म एवं पुण्यकर्म के उदय में होने वाली जीव की दशा का वर्णन कर भव्य जीवों को पापों से भयभीत कर सद् कार्य करने की प्रेरणा दी है। महापुरुषों ने पूर्वभव में जो महान कार्य किये उनका अच्छा फल मिला। इस प्रकार पूर्वभवों का वर्णन कर पुण्य को महिमा मण्डित किया है, जिससे संसारी प्राणी सद्बोध को प्राप्त कर, धर्ममार्ग में लगे। तत्त्वार्थसूत्र में पुण्य-पाप के फल को दिखाया है।

नारका नित्याशुभतरलेश्या परिणाम देह वेदना विक्रियाः ॥ 3 ॥

परस्परोदीरित दुःखाः ॥ 4 ॥

संक्लिष्टा सुरोदीरितदुःखाश्चप्राक्चतुर्थ्याः ॥ 5 ॥

अर्थात् - नारकी हमेशा ही अत्यन्त अशुभ लेश्या, अशुभ परिणाम, अशुभ शरीर, अशुभ वेदना और अशुभ विक्रिया के धारक होते हैं। नारकी जीव आपस में एक दूसरे को दु:ख देते हैं और वे कुत्तों की तरह परस्पर आपस में लड़ते हैं और तीसरे नरक तक जाकर अम्बावरीष जाति के असुरकुमार देव उन्हें पूर्व वैर का स्मरण दिलाकर उन्हें आपस में लड़ाते हैं और प्रसन्न होते हैं। पापकर्म से नरक गति में होने वाले दु:खों का कथन पापों से भयभीत करता है। वहीं पुण्य से स्वर्ग के सुख, शुभ कार्यों में उत्साह उत्पन्न करते हैं।

स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः ॥ 20 ॥

अर्थात् - स्वर्गों में आयु, प्रभाव, सुख, द्युति, लेश्या की विशुद्धता, इन्द्रियों का विषय और अवधिज्ञान का विषय ये सब ऊपर ऊपर के विमानों (वैमानिक देवों) में अधिक अधिक हैं। पुण्य को दर्शाने वाला कथन, सुख, ज्ञान एवं शुक्ल ध्यान में कारण बनता है।

पाप कर्म के कारणों का निराकरण कर पापों से बचने के लिए उनकी जानकारी जरूरी है। तत्त्वार्थसूत्र में पाप के कारणों का भी वर्णन किया है।

बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥ 15 ॥

मायातैर्यग्योस्य ॥16 ॥

अल्पारम्भ परिग्रहत्वं मानुषस्य ॥ 17 ॥

सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥ 20 ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्त्वं च ॥ 21॥

अर्थात् - बहुत आरंभ और बहुत परिग्रह नरक आयु के आस्रव के कारण हैं। मायाचार तिर्यञ्च आयु के आस्रव का कारण है। थोड़ा आरंभ और थोड़ा परिग्रह मनुष्य आयु के आस्रव का कारण है। सराग संयम, संयमासंयम, अकाम निर्जरा और बाल तप एवं सम्यग्दर्शन देव आयु के आस्रव के कारण हैं। इन सूत्रों के अध्ययन से अशुभ से विरक्ति और शुभ में प्रवृत्ति होती है।

करणानुयोग में लोकविभाग, युगपरिवर्तन एवं चारों गतियों का वर्णन किया जाता है। तत्त्वार्थसूत्र में इन सब का वर्णन किया गया है :

रत्नशर्कराबालुकापंकधूमतमोमहातमः प्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठा सप्ताधोऽधः ॥ 1॥
जम्बूद्वीप लवणोदादयः शुभनामानो द्वीप समुद्राः ॥ 7॥
उत्तरादक्षिणतुल्याः ॥ 26॥
आरणाच्युता दूर्ध्वमेकैकेन नवसुग्रैवेयकेषुविजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ 32॥
भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौषट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यव सर्पिणीभ्याम् ॥ 27॥

अर्थात् - अधोलोक में रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा और महातमः प्रभा ये सात भूमियां क्रम से नीचे नीचे हैं। और घनोदधि वातवलय, घनवातवलय, तनुवातवलय और आकाश के आधार हैं। मध्यलोक में अच्छे-अच्छे नाम वाले जम्बू द्वीप आदि द्वीप और लवण समुद्र आदि समुद्र हैं। जम्बूद्वीप की रचना उत्तर और दक्षिण की समान है। उर्ध्व लोक में सोलह स्वर्ग हैं, स्वर्गों से ऊपर नवग्रैवेयक, नवअनुदिश, पाँच अनुत्तर विमान हैं। युग परिवर्तन, भरतक्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र में होता है। छह कालों से युक्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के द्वारा भरतक्षेत्र और ऐरावतक्षेत्र में वृद्धि और ह्रास होता है। करणानुयोग के इन सूत्रों के अध्ययन से आगम ज्ञान बढ़ता है जिससे श्रद्धा दृढ़ होती है।

जिसमें गृहस्थ और मुनियों के चारित्र का स्वरूप, उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा के कारणों का वर्णन किया जाता है वह चरणानुयोग कहलाता है। तत्त्वार्थसूत्र में चरणानुयोग का विस्तृत वर्णन मिलता है :

हिंसानृत-स्तेयाब्रह्म परिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्॥ 1॥
देश सर्वतोऽणु महती॥ 2॥
तत्स्थैर्यार्थं भावना पञ्चपञ्च॥ 3॥
निःशल्योव्रती ॥ 18॥
व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम्॥ 24॥

अर्थात् - हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँच पापों का बुद्धिपूर्वक त्याग करना व्रत है। अणुव्रत और महाव्रत, व्रतों के दो भेद हैं। इन व्रतों की स्थिरता (रक्षा) के लिये प्रत्येक व्रत की पाँच-पाँच भावनायें होती हैं। व्रतों की विशुद्धि के लिए अतिचारों से बचने के लिए प्रत्येक व्रत के पाँच पाँच अतिचार बताये हैं। इन सूत्रों के अध्ययन से श्रद्धान की दृढ़ता एवं व्रताचरण की प्रेरणा मिलती है। जिससे सुगति एवं मुक्ति मिलती है। इसी प्रकार द्रव्यानुयोग का विशद वर्णन तत्त्वार्थसूत्र में मिलता है।

जिसमें जीव, अजीव आदि प्रमुख तत्त्वों को पुण्य, पाप, बन्ध, मोक्ष, आस्रव, संवर और निर्जरा का कथन किया जाता है वह द्रव्यानुयोग कहलाता है। पूरा तत्त्वार्थसूत्र इसी विषय वस्तु का कथन करने वाला है। कुछ सूत्र दृष्टव्य हैं।

उपयोगो लक्षणम् ॥ 8॥
स द्विविधोऽष्ट चतुर्भेदः॥ 9॥
संसारिणो मुक्ताश्च॥ 10॥
सद्द्रव्य लक्षणम् ॥ 29॥
उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ 30॥
नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ 4॥
कायवाङ्मनः कर्मयोगः ॥ 1॥ स आस्रवः॥ 2॥
सकषायत्वाज्जीवः कर्मणोयोग्यान् पुदगलानादत्ते स बन्धः ॥ 2॥

अर्थात् - जीव का लक्षण उपयोग है। वह दो प्रकार का, आठ और चार भेद वाला है। संसारी और मुक्त की अपेक्षा जीव दो प्रकार के हैं। द्रव्य का लक्षण सत् है। जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सहित होता है वह सत् है। द्रव्य नित्य, अवस्थित और अरूपी है काय, वचन और मन की क्रिया को योग कहते हैं, वह योग ही आस्रव है। जीव कषायवान होने से कर्म के योग्य कार्माण वर्गणा रूप पुद्गल स्कन्धों को ग्रहण करता है, वह बन्ध कहलाता है।

आस्रव निरोधः संवरः ।
स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरिषहजय चारित्रैः॥ 2॥
तपसा निर्जरा च ॥ 3॥

अर्थात् - आस्रव का रुकना संवर है। वह संवर गुप्ति, समिति, दशधर्म, बारहअनुप्रेक्षा, बाइस परीषहजय और चारित्र से होता है। तप से निर्जरा होती है। द्रव्यानुयोग की दृष्टि से तत्त्वार्थसूत्र पूर्ण समृद्ध है। इसमें सात तत्व, छह द्रव्य, पाप, पुण्य आदि की सूक्ष्मता से चर्चा भी की गई है। न्याय के बिना आध्यात्म अधूरा रहता है। न्याय का विषय तत्त्वनिर्णय में अहम् भूमिका निभाता है। तत्त्वार्थसूत्र के कुछ सूत्र न्याय विवेचन में महत्वपूर्ण हैं।

प्रमाण नयैरिधगमः ॥ 6॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मतिश्रुतावधि मनः पर्यय केवलानिज्ञानम् ॥ 9 ॥
तत् प्रमाणे ॥ 10 ॥ आद्ये परोक्षम् ॥ 11 ॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥ 12 ॥
नैगम संग्रह व्यवहारर्जु सूत्र शब्द समभिरूढैवंभूतानयाः ॥ 33 ॥

अर्थात् - तत्त्वों का ज्ञान प्रमाण और नयों से होता है। मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवलज्ञान ये पाँच तत्त्व ज्ञान के प्रमाण हैं। यह दो रूप हैं। आदि के दो ज्ञान परोक्ष प्रमाण, शेष तीन ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत ये सात नय हैं। इन सूत्रों के अध्ययन से तत्त्व के स्वरूप का निर्णय होता है। जो मोक्षमार्ग में साधक है। आत्म चिन्तन रूप आध्यात्म की चर्चा भी तत्त्वार्थसूत्र में की गई है।

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्व तत्त्व मौदयिक पारिणामिकौ च ॥ 1 ॥
अविग्रहा जीवस्य ॥ 27 ॥ अप्रतीघाते ॥ 40 ॥
अनादिसम्बन्धे च ॥ 41 ॥
आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥ 28 ॥
बन्धहेत्वभाव निर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥ 2 ॥

अर्थात् - जीव के औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक औदयिक और पारिणामिक ये पाँच निज भाव हैं। मुक्त जीव की गति मोड़ारहित सीधी होती है। तैजस और कार्मण ये दोनों शरीर बाधारहित हैं। इनका आत्मा के साथ अनादिकाल से संबंध है। बन्ध के कारणों का अभाव तथा निर्जरा के द्वारा ज्ञानावरण आदि समस्त कर्मों का अत्यन्त अभाव होना मोक्ष है। इन सूत्रों में आध्यात्म की चर्चा है जिनके चिन्तन से कर्म निर्जरा होती है। अनेकान्त और स्याद्वादसिद्धान्त जो जैन आगम का प्राण कहा जाता है। इसके बिना जैन सिद्धान्त अधूरा रहता है इसका वर्णन भी सूत्र जी में किया है-

अर्पितानर्पित सिद्धेः ॥ 32 ॥

अर्थात् - मुख्यता तथा गौणता से अनेक धर्म वाली वस्तु का कथन किया जाता है। इस सूत्र में अनेकान्त स्याद्वाद सिद्धान्त का वर्णन कर श्री उमा स्वामी जी महाराज ने इस ग्रन्थ को पूर्णता प्रदान की है। ऐसे महान ग्रन्थ के स्वाध्याय से सम्पूर्ण जैन आगम का संक्षिप्त स्वाध्याय हो जाता है। वर्तमान में अज्ञानता, व्यस्तता और समयाभाव के कारण व्यक्ति बड़े-बड़े ग्रन्थों का अध्ययन नहीं कर पाते उनको तत्त्वार्थसूत्र बहुत उपयोगी है। दशलक्षण पर्व में ही समय मिलता है जब व्यक्ति पापाचरण का त्याग करता है। यह समय तत्त्वार्थसूत्र के अध्ययन के लिए उपयुक्त है। किन्तु कुछ वर्षों से देखा जा रहा है कि पूजन-भजन-नृत्य-आरती में तो हम पूरा समय देते हैं, किन्तु तत्त्वार्थसूत्र वाचन के समय अंगुलियों पर गिनने योग्य व्यक्ति ही रहते हैं। इन दिनों मन विशुद्ध रहता है, पाप से विरक्ति रहती है ऐसे में मन लगाकर तत्त्वार्थसूत्र का स्वाध्याय करने से जैनागम को समझने की ललक जगेगी। अतः दशलक्षण पर्व में सूत्र जी का वाचन बहुत ही महत्वपूर्ण है। **रजवाँस, सागर (म.प्र.)**

मुक्तक

योगेन्द्र दिवाकर

कहीं प्रकाशित कविता होती,
कहीं शब्द लगता है मोती।
कहीं प्रकाशित मन होता है,
कहीं आत्मा गद्गद् होती।

कहीं किसी को भाती नारी,
कहीं कोई प्रतिमाधारी,
किन्तु जो शिवपथ पर रहता,
वह सम्यक् है आत्म पुजारी

सतना, म.प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षमा धर्म ही नहीं, दवा भी है

डॉ. प्रेमचन्द्र जैन

स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में 'धर्म' की परिभाषा इस प्रकार दी गई है :

"धम्मो वत्थु-सहावो, खमादि-भावो य दस-विहो धम्मो।
रयण - तयं य धम्मो, जीवावं रक्खणं धम्मो" ॥478॥

अर्थात् वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं, दस प्रकार के क्षमा आदि भावों को धर्म कहते हैं, रत्नत्रय को धर्म कहते हैं और जीवों की रक्षा को अर्थात् दया को धर्म कहते हैं।

इस प्रकार वस्तु स्वभाव, क्षमादि दस धर्म, रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र), जीव दया ये सभी समानार्थक शब्द हैं।

वस्तुत: उत्तम क्षमादि दस धर्म ये आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं। इन दस धर्मों में पारस्परिक घनिष्ठ संबंध है, उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि किसी एक भी गुण के अभाव में अन्यों का अभाव स्वत: ही गर्भित है। फिर भी इन दस धर्मों की आधार भूमि प्रथम धर्म 'क्षमा' ही है। इसीलिए क्षमा को 'पृथ्वी' भी कहते हैं। यदि क्षमा रूपी आधार ही नहीं होगा तो मार्दव, आर्जव आदि का प्रासाद खड़ा नहीं किया जा सकता और इसके अभाव में 'धर्म' की संज्ञा नहीं बनेगी। वस्तु का स्वभाव भी नहीं बनेगा क्योंकि क्षमा तो आत्मा का स्वभाव है। जीव दया का पालन क्षमा के अभाव में अर्थात् 'क्रोध' में बनना संभव ही नहीं है। 'क्षमा' के अभाव में सम्यक्चारित्र का पालन नहीं होगा, अत: 'रत्नत्रय' भी अधूरा रहेगा। इसलिए जैनदर्शन में क्षमा का और दस दिन के पर्व के उपरान्त पुन: 11वां दिन क्षमावाणी के रूप में सर्वत्र मनाया जाता है। इस तरह क्षमा आधार भूमि भी है और दस धर्म रूपी प्रासाद का स्वर्ण कलश भी! आधार भूमि रूपी क्षमा और कलश रूपी क्षमावाणी के बीच में अन्य नौ धर्म हैं। वे भी आत्मा के स्वभाव हैं और क्षमा में समाहित भी हैं। इस प्रकार धार्मिक, आध्यात्मिक दृष्टि से 'क्षमा' अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

क्षमा का अभाव क्रोध है जो आत्मा का विभाव परिणाम है और विभाव आत्मा के साथ-साथ शारीरिक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक आदि समस्त मुसीबतों का वाहक है। आत्मानुशासन में कहा गया है "क्रोधोदयाद् भवति कस्य न कार्यहानि:" अर्थात् क्रोध के उदय में किसकी कार्यहानि नहीं होती? आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने क्रोध नामक अपने मनोवैज्ञानिक निबन्ध में इस पर सांगोपांग प्रकाश डाला है। उदाहरण देते हुए उन्होंने लिखा है कि जब चूल्हा फूँकते-फूँकते रहने पर भी वह नहीं चेता (जला) तो पंडितजी ने क्रोध वशात उस पर पानी डाल दिया। हानि किसकी हुई? थोड़ी देर में जो चूल्हा चेत उठता, अब तो उसके जल उठने की आशा ही नहीं रही। इतिहास एवं प्रथमानुयोग के ग्रन्थ क्रोध के दुष्परिणामों से भरे पड़े हैं।

क्रोध की उत्पत्ति का मूल कारण अपने अपने मनोनुकूल कार्य नहीं होना है और उसका निमित्त कोई न कोई दूसरा व्यक्ति या पदार्थ होता है जिस पर क्रोध का प्रदर्शन होता है, चाहे वह दोषी हो या ना भी हो। कालान्तर में यह क्रोध ही वैर में परिवर्तित हो विनाशकारी रूप ले लेता है - इतिहास के सभी युद्ध इसी के परिणाम हैं। इसीलिए श्री रामचन्द्र शुक्ल ने वैर को क्रोध का अचार या मुरब्बा कहा है।

यह सभी का अनुभूत तथ्य/सत्य है कि पर पदार्थ या पर व्यक्ति/व्यक्तियों पर क्रोध करने से उन पदार्थों या व्यक्तियों को हानि होती हो या न भी हो, किन्तु क्रोध करने वाले की हानि तो अवश्यम्भावी है। सबसे अधिक नुकसान क्रोध करने वाले को होता है, विशेषकर ऐसे व्यक्ति के स्वास्थ्य पर क्रोध विनाशकारी प्रभाव डालता है और वह मानसिक रोग के साथ-साथ शारीरिक रोगों से भी ग्रस्त हो जाता है। इसके उपचार की विधि क्रोध रूपी विभाव से लौटकर क्षमा रूपी स्वभाव में स्थित होना है।

क्षमा का प्रभाव : समाजशास्त्रीय एवं चिकित्सा विज्ञान के कुछ शोध

एक अन्तर्राष्ट्रीय अंग्रेजी पत्रिका रीडर्स डाइजेस्ट के जून 2004 के अंक में श्रीमती लीसा कोलियर कूल का एक लेख 'दि पावर ऑफ फारगिविंग : वेस्ट वे टू हील ए हर्ट' प्रकाशित हुआ है जिसमें स्वास्थ्य की दृष्टि से क्षमा के प्रभाव सम्बन्धी हुए वैज्ञानिक प्रयोगों का विस्तार पूर्वक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्णन किया है।

तनावमुक्त होने के लिए एक पक्षीय क्षमा भी पर्याप्त है

उक्त लेख में एलिजाबेथ नासाउ की एक सत्य घटना उद्धृत है। नासाउ ने अपने एक अच्छी महिला मित्र को उसके जन्म दिवस पर बधाई देने फोन किया, किन्तु बधाई स्वीकार करने के स्थान पर उसने उस पर शाब्दिक आक्रमण कर उसे हक्का-बक्का कर दिया। उस महिला मित्र ने उसे खरी-खोटी सुनाई और अपनी नाराजी की एक लम्बी सूची गिनाई, जिसमें नासाउ के अनुसार वास्तविकता कम थी, और फोन पटक कर बंद कर दिया। नासाउ का मानना था कि उसकी मित्र का उसकी प्रगति से ईर्ष्या वश ऐसा व्यवहार था। उसके अनुसार उसकी एक पुस्तक प्रकाशनाधीन थी, उसके निबन्ध भी पुरस्कृत हुए थे। मित्र को यह सब अच्छा नहीं लगा। अपनी अच्छी मित्र के ऐसे व्यवहार से वह अत्यंत दुखी थी और क्रोध भी था। तब से वह महिला मित्र कभी भी और कहीं भी दिखी, तो नासाउ की हृदय की धड़कन बड़ जाती थी और वह परेशानी का अनुभव करती थी। एक लम्बे समय उपरान्त संयोगवश कहीं दिखी, तो उसकी वह विच्छेदित मित्र यकायक फिर मिल गयी।अब की बार उसको अनदेखा करने के स्थान पर नासाउ ने उस महिला मित्र को रोककर कहा, कि उसने किस प्रकार अपने शब्दों से उसको गंभीर रूप से चोट पहुँचाई है। उस महिला मित्र ने सब बातें सुनी पर कोई खेद प्रकट नहीं किया। नासाउ ने बताया कि अब उसे स्वयं अपने आप पर बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि दोषी न होने पर भी उसने यकायक स्वयं इस बात पर खेद प्रगट किया कि इतने समय तक अपनी मित्र के प्रति घृणा के भाव और क्रोध पालती रही। नासाउ लिखती है, कि ज्यों ही मैंने खेद प्रकट करने के शब्द उच्चारित किए, मैंने अनुभव किया, कि मैंने उसे क्षमा कर दिया है। इसका प्रभाव भी तुरन्त हुआ। मेरा क्रोध पिघल गया। यद्यपि उससे मित्रता पुनर्नवीनीकृत नहीं हुई, किन्तु अब उसके देखने पर क्रोध या घृणा के भाव नहीं आए, उसके देखने पर हृदय की धड़कन एवं श्वास-प्रच्छवास सामान्य रूप से शांत रहा और वह पूर्णतया तनाव मुक्त हो गयी।

फ्रायड लस्किन के प्रयोग : दीर्घावधि क्रोध पालते रहने के दुष्परिणाम

स्टानफोर्ड विश्वविद्यालय के 'फारगिवनेस प्रोजेक्ट (क्षमा शीलता परियोजना) के निदेशक एवं फारगिव फॉर गुड' के लेखक फ्रायड लस्किन ने जोर देकर लिखा है कि क्षमा कर देने का अर्थ अपराध की क्षमा नहीं है। अपने समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर उनका निष्कर्ष है कि मन से मनोमालिन्य या गांठ निकाल देने से व्यक्ति के मानसिक तनाव का दबाव स्तर कम से कम 50% कम हो जाता है।

क्रोध से तनाव युक्त व्यक्तियों का अध्ययन लस्किन ने किया था। उनमें क्षमा भाव आने से उनकी ऊर्जा शक्ति, मनोदशा, नींद की अवधि तथा गुणवत्ता और उनकी समस्त शारीरिक जीवन शक्ति में पर्याप्त सुधार पाया गया। सुझाव देते हुए लस्किन निष्कर्षत: लिखते हैं, "आपके साथ कितना अनुचित व्यवहार किया गया है, इस कटुता और क्रोध के भार को ढोते रहना अत्यधिक विषैला है।"

क्रोधित दशा में शारीरिक संरचना और स्वास्थ्य पर प्रभाव

क्रोध एक तनाव उत्पादक मनोविकार है और कोई भी तनाव-उत्पादक घटना, चाहे वह अग्नि खतरा संकट हो या कुल-वैर की कोई घटना हो, जो अन्दर ही अन्दर संकट के रूप में उबल रही हो। ऐसी अवस्था में हमारा शरीर एडरीन लाईन (अधिवृक्क) और कारटीसोल (अधिवृक्क प्रांतस्था से तैयार स्टेरायड) नामक दबाव या तनाव पैदा करने वाले हार्मोन विमोचित करता है। जो हमारे हृदय की धड़कन बढ़ाने, श्वास-प्रच्छवास की गति तेज करने एवं हमारे मस्तिष्क की दौड़ के लिए उकसाने का काम करते हैं। इसके साथ ही माँसपेशियों में शर्करा की गति बढ़ जाती है और रक्त में थक्का बनाने वाले कारक तरंगित होने लगते हैं। यदि तनाव उत्पादक घटना राजमार्ग पर होने वाली छोटी-मोटी दुर्घटना के समान बहुत थोड़े समय के लिए हो तो वह हानिकारक नहीं है। किन्तु क्रोध और विद्वेष-ईर्ष्या तो उन दुर्घटनाओं के समान है, जिनका कभी अन्त नहीं होता और जो हमारे जीवन की रक्षा करने वाले हार्मोन्स को विष में परिवर्तित कर देते हैं।

शरीर की प्रतिरक्षात्मक प्रणाली पर कार्टीसोल का अवसादक प्रभाव गंभीर व्यतिक्रम से जुड़ा है। रॉकफेलर विश्वविद्यालय, न्यूयार्क के तंत्रिका अंतस्राव विज्ञान प्रयोगशाला के निदेशक ब्रूस मैक्ईवेन कहते हैं कि कार्टीसोल मस्तिष्क की शक्ति कम कर देता है जिससे कोशिका-क्षीणता एवं स्मरण शक्ति को हानि पहुँचती है। इससे रक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दबाव (ब्लड प्रेशर), शर्करा बढ़ना और धमनियों में कड़ापन आ जाता है जिससे हृदय रोग हो सकता है। क्षमा भाव से इन हार्मोनों का प्रभाव रुक जाता है।

कतिपय शोध के परिणाम : क्षमा देती दवा का काम

1. विस्कानसन मेडीसन विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं ने अमेरिकी मन: शारीरिक सोसायटी में प्रस्तुत अपने अध्ययन में 36 भूतपूर्व पुरुष सैनिकों को स्वास्थ्य लाभ के लिए भर्ती किया। जिन्हें हृदय-धमनी संबंधी रोग था, जो कई दुख:दायी समस्याओं के बोझ ढो रहे थे, जिनमें कुछ युद्ध से सम्बन्धित, कुछ वैवाहिक समस्याएं, जीविका संघर्ष या बचपन में मानसिक आघातों से सम्बन्धित थी। आधे व्यक्तियों को क्षमा शीलता का प्रशिक्षण दिया गया था तथा शेष को नहीं। जिन्हें क्षमा शीलता का प्रशिक्षण दिया गया था उनके हृदय में रक्त प्रवाह अपेक्षाकृत अधिक रहा और धमनियों का कड़ापन दूर हो गया।

2. 2001 में मनोवैज्ञानिक चार्लोट विट विलियट ने 71 महाविद्यालयीन छात्रों को एक स्मरण दिलाने वाले यंत्र से सम्मोहित दशा में बांधा और उन्हें उनके परिवार के सदस्यों, मित्रों या प्रेमियों के द्वारा किये गये मिथ्या आरोपों, अपमानों एवं विश्वासघातों को पुनर्जीवित करने को कहा गया। बाद में उनसे कहा गया कि वे अब सभी दोषियों को क्षमा कर दें। तद्नुसार प्रतिक्रिया करने वाले छात्रों के मन में अब क्षमा अपनाने के अपने दोषियों के प्रति दुर्भाव या मनोमालिन्य बनाए रखने की अपेक्षा अब क्षमा भाव अपनाने के बाद ढाई गुना रक्तचाप कम हो गया। विलियट लिखते हैं - ''ऐसा प्रतीत होता है कि क्षमा क्रोध का प्रभावशाली/शक्तिशाली प्रतिरोधक हो सकता है क्योंकि क्रोध चिरकालिक रूप से बढ़ते हुए रक्तचाप से सम्बन्धित होता है जिससे हृदय रोग का खतरा बढ़ जाता है।''

3. एक महिला सेन्ड्रालेम्ब अपने 42 वर्षीय पिता के द्वारा पिछले वर्ष से खराब कार-चालन (कार ड्रायविंग) से बहुत चिंतित थी। वह अपने पिता के सामने गई और उनसे कहा कि अब वे स्वयं कार चलाना छोड़ दें क्योंकि उनका कार चालन दिन ब दिन खतरनाक होता जा रहा है। लेम्ब के इस कथन पर उसके पिता इतने नाराज हुए कि वह क्रोध से कांपने लगे और कहा - ''मैं अपने पूरे जीवन भर स्वयं कार चलाता रहा हूँ और कोई भी मेरी कार की चाबी लेने नहीं जा रहा है।'' और लेम्ब के पिता ने अपनी पुत्री से कहा वह अब पुन: उसकी सूरत भी देखना नहीं चाहता है।

लेम्ब इस व्यवहार से इतनी अधिक क्षुब्ध और क्रोधित हुई कि उसने सात माह तक अपने पिता से बात तक नहीं की। फिर एक दिन उसने विचार किया कि बहुत देर होने से पहले उसे अपने पिता से पुन: मेल-मिलाप करना चाहिए। वह उनसे मिलने गयी और उनसे कार ड्रायविंग के मामले में अपने व्यवहार पर खेद प्रकट किया तथा उन्हें दुखी करने के लिए उनसे क्षमा मांगी। पुत्री लेम्ब ने उन्हें, उसे फटकार कर बाहर निकालने को भी क्षमा कर दिया। पिता ने तुरन्त उसे गले लगा लिया और कहा, ''ठीक है, मैं, हमारे बीच सम्बन्धों के पुनर्स्थापन से बहुत प्रसन्न हूँ।'' शीघ्र ही स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं के कारण कार ड्रायविंग विवाद भी शांत हो गया और दोनों पक्षों का तनावयुक्त परिवेश स्वयं समाप्त हो गया जिसका उनके स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

4. एक वीडियो प्रोड्यूसर ओ ब्रीन ने अपने तलाक (1992) के बाद वर्षों तक अपने पूर्व पति के प्रति घृणा संजोए रखी। उसको क्रोध इस बात का था कि परस्पर सम्बन्धों की दरार ने किस प्रकार उसका भविष्य बर्बाद कर दिया। ब्रीन लिखती हैं, - ''यकायक मैं 2 साल की पुत्री की एक मात्र अकेली माता-पिता बन गयी हूँ। मेरे साथ डाक्टरों की व्यवस्था और एक बच्ची की माँ होने की खुशी बाँटने वाला कोई नहीं होना, अत्यन्त निराशाजनक हताश करने वाला था। जबकि मैंने सोचा था कि हम अपने परिवार का साथ-साथ निर्माण करेंगे।''

क्रोध ने अपना कर वसूलना शुरू किया। ब्रीन के शब्दों में ''मैं प्रत्येक समय तनावग्रस्त एवं कड़ेपन से रहने लगी, लगातार सर्दी और हमेशा थकावट का अनुभव होने लगी'' वह आगे लिखती हैं, ''एक पार्टी में किसी ने मेरा एक महिला से परिचय कराते समय कहा कि इसके पति ने इसे भी छोड़ दिया है। यह सुनकर मुझे बड़ा धक्का लगा कि अब मेरी पहचान एक कटु पूर्व पत्नि की हो गयी है।'' इससे वह और भी विचलित होने लगी।

तब उसने फ्रायड लस्किन का एक आडियो टेप सुना जिसे सुनकर ब्रीन को लगा उसे प्रकाश स्रोत बल्ब मिल गया है। वह लिखती है ''वह टेप ऐसा लगा मानो प्रकाश स्रोत बल्ब निरन्तर प्रकाशित हो रहा है, मैंने अनुभव किया कि मैं स्वयं ही वह महिला हूँ जिस पर अब तक मैं आघात कर रही थी'' उसने अपने पूर्व पति को फोन किया कि सब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ ठीक चल रहा है और उसने उल्लेखनीय भारी राहत अनुभव की। उसके शब्दों में, ''मेरे कन्धों से एक बढ़ा बोझ उतर गया जिससे मैं अपेक्षाकृत अपने को अधिक स्वस्थ अनुभव करने लगी।'' लस्किन कहते हैं, कि अपनी नाराजगी का समाधान इस प्रकार करने से ''वैरपूर्ण भावनाएँ सकारात्मक सोच में बदल जाती हैं और आपके शरीर को शांत और आरामदायी अनुभव कराती हैं जिससे स्वास्थ्य में वृद्धि होती है।''

5. लस्किन ने अपने एक अध्ययन में उत्तरी आयरलैन्ड के 17 वयस्कों को जिनके सम्बन्धी आतंकवादी हिंसा के शिकार हुए थे, एक सप्ताह का क्षमाशीलता का प्रशिक्षण दिया। परिणामत: उनके हताशापूर्ण दु:ख में 40 प्रतिशत की कमी आई तथा सिरदर्द, कमरदर्द और अनिद्रा में 35 प्रतिशत की कमी अनुभव की गई।

इस सम्बन्ध में लस्किन का यह कथन शत प्रतिशत सही है कि क्षमाशीलता का यह अर्थ कदापि नहीं है कि किया गया अपराध सही था या तुम अपने ऊपर दुर्व्यवहार होने दो। जैन दर्शन भी पाप से घृणा करता है पापी से नहीं, क्योंकि सभी जीव शुद्ध निश्चय नय से परमात्मावत, चिदानन्दमय, स्वात्मरसलीन, ज्ञानचैतन्य स्वभावी हैं। मात्र कर्मों के आवरण से वे आज स्व-स्वरूप से भटकते हुए पाप, अनाचार और दुष्कृत्य करते दिखाई देते हैं। जिस दिन स्वात्म बल से समस्त कर्मों का क्षय हो जाएगा, पूर्व पापी से पापी जीव भी सिद्ध परमेष्ठी का महान पद प्राप्त कर लेंगे। प्रथमानुयोग के ग्रन्थ इस प्रकार के अनेक कथानकों से भरे पड़े हैं। हिंसक कृत्य, दुष्कृत्य, चोरी, बलात्कार आदि पापों से कदाचित ही कोई बचा होगा। तीर्थंकर महावीर के जीव ने सिंह पर्याय में पर्याप्त हिंसा की थी। अंजन चोर का कथानक तो जगत प्रसिद्ध है जो अंजन चोर से निरंजन बन गया। शंवुकुमार तो तद्भव मोक्षगामी जीव थे किन्तु उनसे भी बलात्कार जैसे घृणित कृत्य हुए जिन्होंने अपने एक माह के राज्यकाल में अपनी प्रजा की शीलवती महिलाओं का शीलभंग करने में संकोच नहीं किया। अत: दुष्कृत्य, हिंसादि पापों से घृणा करना तो अभीष्ट है किन्तु उनके कर्ताओं से नहीं, उनके सुधार का मार्ग ही वांछित है।

न्यूयार्क की मनोचिकित्सक जेनिसेफर जो ''फारगिविंग एंड नो फारगिविंग'' की लेखक भी हैं कहती हैं ''कुछ लोगों को मूलत: मेल-मिलाप समस्या का कोई समाधान नहीं हैं किन्तु यदि आप उद्विग्न नहीं हैं और प्रतिशोध लेने की कोई योजना नहीं बना रहे हैं तब आपको शान्ति अवश्य प्राप्त होती है क्योंकि हृदय के अपराधों का कोई एक सर्वमान्य हल नहीं है।'' बहरहाल अपने क्रोध को उलटो-पलटो तब क्षमाशीलता शक्तिशाली हो सकती है। भूतकाल को बदला नहीं जा सकता। किन्तु असमाधानित मामलों का और उनके पीछे संलग्न व्यक्तियों का सामना करने से एक आह्लादवर्द्धक और स्वस्थकर भविष्य की ओर बढ़ा जा सकता है।

विट विलियट का कथन और भी विचारणीय है

''महीनों और वर्षों तक अपनी नाराजगी लटकाए रखने का अर्थ है सदैव क्रोधित बने रहने के प्रति वचनबद्धता'' जो दूसरों को नहीं, स्वयं अपने को अपार दुखदायी और हताशा और निराशा के भंवर में पटकने वाली है।

जैनाचार्यों ने इसे ही अनन्तानुबंधी क्रोध कहा है जिससे नीच गति अवश्यम्भावी है। छह माह से अधिक किसी भी कषाय को बनाए रखने से वह अनन्तानुबंधी में परिवर्तित हो जाती है, और सामान्यत: वैर (जो क्रोध का ही अचार या मुरब्बा है) तो लोग वर्षों क्या पीढ़ी-दर-पीढ़ी भी मनों में संजोये रखते हैं। वैर इतनी बड़ी शल्य है जो व्यक्ति को मन ही मन आन्दोलित करती है वह प्रतिशोध की अग्नि से प्रज्जवलित रहता है, जो अन्दर ही अन्दर उसे खोखला बना देती है। शरीर अस्वस्थ रहने लगता है और एक के बाद एक अनेक बीमारियाँ उसे अपनी चपेट में ले लेती हैं। भगवान बाहुबली के मन में एक छोटी सी शल्य कि वे सब कुछ त्यागने के बाद भी अभी सम्राट भरत की भूमि पर खड़े हैं, ने उन्हें केवलज्ञान की उपलब्धि से 12 वर्ष तक रोके रखा। जब भरत के माध्यम से वह शल्य निकली तो तुरन्त केवलज्ञान हो गया।

निष्कर्षत: क्षमा धर्म ही नहीं, अपितु एक प्रभावकारी परीक्षित औषधि भी है और जब इसमें विशेषण 'उत्तम' लग जाता है तो सोने में सुहागा हो जाता है, भले ही वह एक पक्षीय ही क्यों न हो।

आचार्य विद्यासागर जी के शब्दों में,

प्रत्येक काल सबको करता क्षमा मैं,
सारे क्षमा मुझे करें नित मांगता मैं।
मैत्री रहे जगत के प्रति नित्य मेरी,
हो वैर-भाव किससे जब हैं न कोई बैरी।

जवाहरलाल नेहरू स्मृति महाविद्यालय, गंजबासौदा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊँच-गोत्र का व्यवहार कहाँ?

(धवल सिद्धान्त का एक मनोरञ्जक वर्णन)

पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार

षट्खण्डागमके 'वेदना' नामका चतुर्थ खण्ड के चौबीस अधिकारों में से पाँचवे 'पयडि' (प्रकृति) नामक अधिकार का वर्णन करते हुए, श्री भूतबली आचार्य ने गोत्रकर्म-विषयक एक सूत्र निम्न प्रकार दिया है:

"गोदस्य कम्मस्स दुवे पयडीओ उच्चागोदं चेव णीचागोदं चेव एवदियाओ पयडीओ ॥ 129 ॥"

श्रीवीरसेनाचार्य ने अपनी धवला-टीका में, इस सूत्र पर जो टीका लिखी है वह बड़ी ही मनोरंजक है और उससे अनेक नई नई बातें प्रकाश में आती हैं- गोत्रकर्म पर तो अच्छा खासा प्रकाश पड़ता है और यह मालूम होता है कि वीरसेनाचार्य के अस्तित्वसमय अथवा धवलाटीका (धवलसिद्धान्त) के निर्माण-समय (शक सं. 738) तक गोत्रकर्म पर क्या कुछ आपत्ति की जाती थी? अपने पाठकों के सामने विचार की अच्छी सामग्री प्रस्तुत करने और उनकी विवेकवृद्धि के लिये मैं उसे क्रमशः यहाँ देना चाहता हूँ।

टीका का प्रारम्भ करते हुए, सबसे पहले यह प्रश्न उठाया गया है कि- "उच्चैर्गोत्रस्य क्व व्यापारः?"- अर्थात् ऊँच गोत्र का व्यापार-व्यवहार कहाँ? - किन्हें उच्चगोत्री समझा जाय? इसके बाद प्रश्न को स्पष्ट करते हुए और उसके समाधान रूप में जो जो बातें कही जाती हैं, उन्हें सदोष बतलाते हुए जो कुछ कहा गया है, वह सब क्रमशः इस प्रकार है :

1. "न तावद्राज्यादिलक्षणायां संपदि (व्यापारः), तस्याः सद्वेद्यतस्समुत्पत्तेः।"

अर्थात् - यदि राज्यादि -लक्षणवाली सम्पदा के साथ उच्चगोत्र का व्यापार माना जाय, ऐसे सम्पत्तिशालियों को ही उच्चगोत्री कहा जाय, तो यह बात नहीं बनती। क्योंकि ऐसी सम्पत्ति की समुत्पत्ति अथवा सम्प्राप्ति सातावेदनीय कर्म के निमित्त से होती है। उच्चगोत्र का उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

2. "नाऽपिपंचमहाव्रतग्रहण-योग्यता उच्चैर्गोत्रेण क्रियते, देवेष्वभव्येषु च तद्ग्रहणं प्रत्ययोग्येषु उच्चैर्गोत्रस्य उदयाभावप्रसंगात्।"

यदि कहा जाय कि उच्च गोत्र के उदय से पँच महाव्रतों के ग्रहण की योग्यता उत्पन्न होती है और इसलिए जिनमें पँचमहाव्रतों के ग्रहण की योग्यता पाई जाय उन्हें ही उच्चगोत्री समझा जाए, तो यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि ऐसा मानने पर देवों में और अभव्यों में, जो कि पँचमहाव्रत-ग्रहण के अयोग्य होते हैं, उच्चगोत्र के उदय का अभाव मानना पड़ेगा-; परन्तु देवों के उच्चगोत्र का उदय माना गया है और अभव्यों के भी उसके उदय का निषेध नहीं किया गया है।

3. "न सम्यग्ज्ञानोत्पत्तौ व्यापारः, ज्ञानावरण-क्षयोपशम-सहाय-सम्यग्दर्शनतस्त-दुत्पत्तेः, तिर्यक्नारकेष्वपि उच्चैर्गोत्रं तत्र सम्यगज्ञानस्य सत्त्वात्।"

यदि सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति के साथ में ऊँच गोत्र का व्यापार माना जाय-जो सम्यग्ज्ञानी हों उन्हें उच्चगोत्री कहा जाय-तो यह बात ठीक घटित नहीं होती; क्योंकि प्रथम तो ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम की सहायता पूर्वक सम्यग्दर्शन से सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति होती है, उच्चगोत्र का उदय उसकी उत्पत्ति में कोई कारण नहीं है। दूसरे, तिर्यंच और नारकियों में भी सम्यग्ज्ञान का सद्भाव पाया जाता है; तब उनमें भी उच्चगोत्र का उदय मानना पड़ेगा और यह बात सिद्धान्त के विरुद्ध होगी, सिद्धान्त में नारकियों और तिर्यंचों के नीचगोत्र का उदय बतलाया है।

4. "नादेयत्वे यशसि सौभाग्ये वा व्यापारस्तेषां नामतस्समुत्पत्तेः।"

यदि आदेयत्व, यश अथवा सौभाग्य के साथ में उच्चगोत्र का व्यवहार माना जाय, जो आदेयगुण से विशिष्ट (कान्तिमान्), यशस्वी अथवा सौभाग्यशाली हों उन्हें ही उच्चगोत्री कहा जाय, तो यह बात भी नहीं बनती। क्योंकि इन गुणों की उत्पत्ति आदेय, यशः और सुभग नामक नामकर्म प्रकृतियों के उदय से होती है। उच्चगोत्र उनकी उत्पत्ति में कोई कारण नहीं है।

5. "नेक्ष्वाकुकुलाद्युत्पत्तौ (व्यापारः) काल्पनिकानां तेषां परमार्थतोऽसत्वाद्, विड्-ब्राह्मण-साधु (शूद्रे?) ष्वपि उच्चैर्गोत्रस्योदयदर्शनात्।"

यदि इक्ष्वाकु-कुलादि में उत्पन्न होने के साथ ऊँचगोत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का व्यापार माना जाय, जो इन क्षत्रिय कुलों में उत्पन्न हों उन्हें ही उच्चगोत्री कहा जाय, तो यह बात भी समुचित प्रतीत नहीं होती। क्योंकि प्रथम तो इक्ष्वाकुआदि क्षत्रियकुल काल्पनिक हैं, परमार्थ से (वास्तव में) उनका कोई अस्तित्व नहीं है। दूसरे, वैश्यों, ब्राह्मणों और शूद्रों में भी उच्चगोत्र के उदय का विधान पाया जाता है।

6. "न सम्पन्नेभ्यो जीवोत्पत्तौ तद्व्यापारः, म्लेछराज-समुत्पन्न-पृथुकस्यापि उच्चैर्गोत्रोदयप्रसंगात्।"

सम्पन्न (समृद्ध) पुरुषों से उत्पन्न होने वाले जीवों में यदि उच्चगोत्र का व्यापार माना जाय, समृद्धों एवं धनाढ्यों की सन्तान को ही उच्च गोत्री कहा जाय, तो म्लेच्छ राजा से उत्पन्न हुए पृथुक के भी उच्च गोत्र का उदय मानना पड़ेगा और ऐसा माना नहीं जाता। (इसके सिवाय, जो सम्पन्नों से उत्पन्न न होकर निर्धनों से उत्पन्न होंगे, उनके उच्चगोत्र का निषेध भी करना पड़ेगा, और यह बात सिद्धान्त के विरूद्ध जाएगी।)

7. "नाऽणुव्रतिभ्यः समुत्पत्तौ तद्व्यापारः, देवेष्वौपपादिकेषु उच्चैर्गोत्रोदयस्य असत्वप्रसंगात्, नाभेयश्च (स्य?) नीचैर्गोत्रतापत्तेश्च।"

अणुव्रतियों से उत्पन्न होने वाले व्यक्तियों में यदि उच्चगोत्र का व्यापार माना जाए अणुव्रतियों की सन्तानों को ही उच्चगोत्री माना जाय, तो यह बात भी सुघटित नहीं होती। क्योंकि ऐसा मानने पर देवों में, जिनका जन्म औपपादिक होता है और जो अणुव्रतियों से पैदा नहीं होते, उच्चगोत्र के उदय का अभाव मानना पड़ेगा और साथ ही नाभिराजा के पुत्र श्री ऋषभदेव (आदि तीर्थंकर) को भी नीचगोत्री बतलाना पड़ेगा। क्योंकि नाभिराजा अणुव्रती नहीं थे, उस समय तो व्रतों का कोई विधान भी नहीं हो पाया था।

8. "ततो निष्फलमुच्चैर्गोत्रं, तत एव न तस्य कर्मत्वमपि, तदभावेन नीचैर्गोत्रमपि द्वयोरन्योन्याविनाभावित्वात्, ततो गोत्रकर्माभाव इति।" [1]

जब उक्त प्रकार से उच्चगोत्र का व्यवहार कहीं ठीक बैठता नहीं, तब उच्चगोत्र निष्फल जान पड़ता है और इसीलिए उसके कर्मपना भी कुछ बनता नहीं। उच्चगोत्र के अभाव से नीचगोत्र का भी अभाव हो जाता है; क्योंकि दोनों में परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध है- एक के बिना दूसरे का अस्तित्व बनता नहीं। और इसलिए गोत्रकर्म का ही अभाव सिद्ध होता है।

इस तरह गोत्रकर्म पर आपत्ति का यह 'पूर्वपक्ष' किया गया है, और इससे स्पष्ट जाना जाता है कि गोत्रकर्म अथवा उसका ऊँच-नीच-विभाग आज ही कुछ आपत्ति का विषय बना हुआ नहीं है, बल्कि आज से 1100 वर्ष से भी अधिक समय पहले से वह आपत्ति का विषय बना हुआ था- गोत्रकर्माश्रित ऊँच-नीचता पर लोग तरह-तरह की आशंकाएँ उठाते थे और इस बात को जानने के लिए बड़े ही उत्कण्ठित रहते थे कि गोत्रकर्म के आधार पर किसको ऊँच और किसको नीच कहा जाय? - उसकी कोई कसौटी मालूम होनी चाहिए। पाठक यह भी जानने के लिए बड़े उत्सुक होंगे कि आखिर वीरसेनाचार्य ने अपनी धवलाटीका में, उक्त पूर्वपक्ष का क्या 'उत्तरपक्ष' दिया है और कैसे उन प्रधान आपत्तियों का समाधान किया है जो पूर्व पक्ष के आठवें विभाग में खड़ी की गई हैं। अतः मैं भी अब उस उत्तरपक्ष को प्रकट करने में विलम्ब करना नहीं चाहता। पूर्व पक्ष के आठवें विभाग में जो आपत्तियां खड़ी की गई हैं। वे संक्षेपतः दो भागों में बाँटी जा सकती हैं, एक तो उच्चगोत्र का व्यवहार कहीं ठीक न बनने से उच्चगोत्र की निष्फलता और दूसरा गोत्रकर्म का अभाव। इसीलिए उत्तरपक्ष को भी दो भागों में बाँटा गया है, पिछले भाग का उत्तर पहले और पूर्व विभाग का उत्तर बाद को दिया गया है- और वह सब क्रमशः इस प्रकार है-

1. "(इति) न, जिनवचनास्याऽसत्यत्वविरोधात्, तद्विरोधोऽपि तत्र तत्कारणाभावतोऽवगम्यते। न च केवलज्ञानविषयीकृतेष्वर्थेषु सकलेष्वपि रजोजुषां ज्ञानानि प्रवर्तन्ते येनाऽनुपलंभाज्जिनवचनास्याऽप्रमाणत्व-मुच्येत"

इस प्रकार गोत्रकर्म का अभाव कहना ठीक नहीं है, क्योंकि गोत्रकर्म का निर्देश जिनवचन द्वारा हुआ है और जिनवचन असत्य का विरोधी है। यह बात इतने पर से जानी जा सकती है कि उसके वक्ता श्री जिनेन्द्रदेव ऐसे आप्त पुरुष होते हैं जिनमें असत्य के कारणभूत राग-द्वेष-मोहादिक दोषों का सद्भाव ही नहीं रहता। [2]

जहाँ असत्य-कथन का कोई कारण ही विद्यमान न हो वहाँ से असत्य की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती, और इसलिये जिनेन्द्र कथित गोत्रकर्म का अस्तित्व जरूर है।

इसके सिवाय, जो भी पदार्थ केवलज्ञान के विषय होते हैं उन सबमें रागीजीवों के ज्ञान प्रवृत्त नहीं होते, जिससे उन्हें उनकी उपलब्धि न होने पर जिनवचन को अप्रमाण कहा जासके। अर्थात् केवलज्ञानगोचर कितनी ही बातें ऐसी भी होती हैं जो छद्मस्थों के ज्ञान का विषय नहीं बन सकतीं, और इसलिए रागाक्रान्त छद्मस्थों को यदि उनके अस्तित्व का स्पष्ट अनुभव न हो सके तो इतने पर से ही उन्हें अप्रमाण या असत्य नहीं कहा जा सकता।

2. "न च निष्फलं (उच्चैः) गोत्रं, दीक्षायोग्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साध्वाचाराणां साध्यवाचारै: कृतसम्बन्धानामार्य-प्रत्ययाभिधानव्यवहार-निबन्धनानां पुरुषाणां संतान: उच्चैर्गोत्रम्। तत्रोत्पत्तिहेतुकमप्युच्चैर्गोत्रम्। न चाऽत्र पूर्वोक्तदोषा: संभवन्ति विरोधात्। तद्वीपरीतं नीचैर्गोत्रम्। एवं गोत्रस्य द्वे एव प्रकृती भवत:।''

उच्चगोत्र निष्फल नहीं है; क्योंकि उन पुरुषों की सन्तान उच्चगोत्र होती है जो दीक्षा योग्य साधुआचारों से युक्त हों, साधु-आचार-वालों के साथ जिन्होंने सम्बन्ध किया हो तथा आर्याभिमत नामक व्यवहारों से जो बँधे हों। ऐसे पुरुषों के यहाँ उत्पत्ति का, उनकी सन्तान बनने का, जो कारण है, वह भी उच्चगोत्र है। गोत्र के इस स्वरूप कथन में पूर्वोक्त दोषों की संभावना नहीं है। क्योंकि इस स्वरूप के साथ उन दोषों का विरोध है, उच्चगोत्र का ऐसा स्वरूप अथवा ऐसे पुरुषों की सन्तान में उच्चगोत्र मान लेने पर पूर्व पक्ष में उद्भूत किये हुए दोष नहीं बन सकते। उच्चगोत्र के विपरीत नीचगोत्र है जो लोग उक्त पुरुषों की सन्तान नहीं हैं अथवा उनसे विपरीत आचार-व्यवहार-वालों की सन्तान हैं वे सब नीचगोत्र, पद के वाच्य हैं, ऐसे लोगों के जन्म लेने से कारणभूत कर्म को भी नीचगोत्र कहते हैं। इस तरह गोत्रकर्म की दो ही प्रकृतियाँ होती हैं।

यह उत्तरपक्ष पूर्वपक्ष के मुकाबले में कितना सबल है, कहाँ तक विषय का स्पष्ट करता है और किस हद तक सन्तोषजनक है, इसे सहृदय पाठक एवं विद्वान महानुभाव स्वयं अनुभव कर सकते हैं। मैं तो, अपनी समझ के अनुसार, यहाँ पर सिर्फ इतना बतलाना चाहता हूँ कि इस उत्तर पक्ष का पहला विभाग तो बहुत कुछ स्पष्ट है। गोत्रकर्म जिनागम की खास वस्तु है और उसका यह उपदेश जो उक्त मूलसूत्र में संनिविष्ट है, अविच्छिन्न ऋषि-परम्परा से बराबर चला आता है। जिनागम के उपदेष्टा जिनेन्द्रदेव-भ.महावीर-राग, द्वेष, मोह और अज्ञान आदि दोषों से रहित थे। ये ही दोष असत्यवचन के कारण होते हैं। कारण के अभाव में कार्य का भी अभाव हो जाता है, और इसलिए सर्वज्ञ-वीतराग-कथित इस गोत्रकर्म को असत्य नहीं कहा जा सकता, न उसका अभाव ही माना जा सकता है। कम-से-कम आगम-प्रमाण-द्वारा उसका अस्तित्व सिद्ध है। पूर्व पक्ष में भी उसके अभाव पर कोई विशेष जोर नही दिया गया, मात्र उच्चगोत्र के व्यवहार का यथेष्ट निर्णय न हो सकने के कारण उकताकर अथवा आनुषंगिक रूप से गोत्रकर्म का अभाव बतला दिया है। इसके लिये जो उत्तर दिया गया है, वह भी ठीक ही है। नि:सन्देह, केवलज्ञान-गोचर कितनी ही ऐसी सूक्ष्म बातें भी होती हैं जो हम छद्मस्थों का विषय नहीं हो सकतीं अथवा लौकिक साधनों, लौकिक ज्ञानों से जिनका ठीक बोध नहीं होता और इसलिए अपने ज्ञान का विषय न होने अथवा अपनी समझ में ठीक न बैठने के कारण ही किसी वस्तु-तत्त्व के अस्तित्व से इनकार नहीं किया जा सकता।

हाँ, उत्तरपक्ष दूसरा विभाग मुझे बहुत कुछ अस्पष्ट जान पड़ता है। उसमें जिन पुरुषों की संतान को उच्चगोत्र नाम दिया गया है। उनके विशेषणों पर से उनका ठीक स्पष्टीकरण नहीं होता- यह मालूम नहीं होता कि - 1. दीक्षा योग्य साधु-आचारों से कौन से आचार विशेष अभिप्रेत हैं? 2. 'दीक्षा' शब्द से मुनिदीक्षा का ही अभिप्राय है या श्रावकदीक्षा का भी? क्योंकि प्रतिमाओं के अतिरिक्त श्रावकों के बारह व्रत भी द्वादशदीक्षा-भेद कहलाते हैं।[3] साधुआचार-वालों के साथ सम्बन्ध करने की जो बात कही गई है वह उन्हीं दीक्षायोग्य साधुआचार वालों से सम्बन्ध रखती है या दूसरे साधुआचार वालों से? 4. सम्बन्ध करने का अभिप्राय विवाह-सम्बन्ध का ही है या दूसरा उपदेश, सहनिवास, सहकार्य और व्यापारआदि का सम्बन्ध भी उसमें शामिल है? 5. आर्याभिमत अथवा आर्यप्रत्ययाभिधान नामक व्यवहारों से कौन से व्यवहारों का प्रायोजन है? 6. और इन विशेषणों का एकत्र समवाय होना आवश्यक है अथवा पृथक-पृथक भी ये उच्चगोत्र के व्यंजक हैं? जब तक ये सब बातें स्पष्ट नहीं होतीं, तब तक उत्तर को सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता, न उससे किसी की पूरी तसल्ली हो सकती है और न उक्त प्रश्न ही यथेष्ट रूप में हल हो सकता है। साथ ही इस कथन की भी पूरी जाँच नहीं हो सकती कि 'गोत्र के इस स्वरूप कथन में पूर्वोक्त दोषों की सम्भावना नहीं है।' क्योंकि कल्पना द्वारा जब उक्त बातों का स्पष्टीकरण किया जाता है तो उक्त स्वरूप कथन में कितने ही दोष आकर खड़े हो जाते हैं। उदाहरण कि लिए यदि 'दीक्षा' का अभिप्राय मुनिदीक्षा का ही लिया जाय तो देवों को उच्चगोत्री नहीं कहा जाएगा, किसी पुरुष की सन्तान न होकर औपपादिक जन्मवाले होने से भी वे उच्चगोत्री नहीं रहेंगे। यदि श्रावक के व्रत भी दीक्षा में शामिल हैं तो तिर्यंच पशु भी उच्चगोत्री में ठहरेंगे। क्योंकि वे भी श्रावक के व्रत धारण करने के पात्र कहे गये हैं और अक्सर श्रावक के व्रत धारण करते आए हैं। देव इससे भी उच्चगोत्री नहीं रहेंगे। क्योंकि उनके किसी प्रकार का व्रत नहीं होता, वे अव्रती कहे गए हैं। यदि सम्बन्ध का अभिप्राय विवाह सम्बन्ध से ही हो, जैसा कि म्लेच्छ-खण्डों से आए हुए म्लेच्छों का चक्रवर्ती आदि के साथ होता है फिर वे म्लेच्छ मुनिदीक्षा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तक के पात्र समझे जाते हैं, तब भी देवतागण उच्चगोत्री के नही रहेंगे, क्योंकि उनका विवाह-सम्बन्ध ऐसे दीक्षायोग्य साध्वाचारों के साथ नहीं होता है। यदि सम्बन्ध का अभिप्राय उपदेश आदि दूसरे प्रकार के सम्बन्धों से हो तो शक, यवन, शवर, पुलिंद और चाण्डालदिक की तो बात ही क्या? तिर्यंच भी उच्चगोत्री हो जायेंगे, क्योंकि वे साध्वाचारों के साथ उपदेशादि के सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं और साक्षात् भगवान् के समवसरण में भी पहुँच जाते हैं। इस प्रकार और भी कितनी आपत्तियाँ खड़ी हो जाती हैं।

आशा है विद्वान लोग श्रीवीरसेनाचार्य के उक्त स्वरूप विषयक कथन पर गहरा विचार करके उन छहों बातों का स्पष्टीकरण करने आदि की कृपा करेंगे जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है, जिससे यह विषय भले प्रकार प्रकाश में आ सके और उक्त प्रश्न सभी के समझ में आने योग्य हल हो सके।

सन्दर्भ -

1. ये सब अवतरण और आगे के अवतरण भी आराके जैन सिद्धान्त भवन की प्रति पर से लिये गये हैं।

2. जैसा कि 'धवला' के ही प्रथम खण्ड में उद्धृत निम्न वाक्यों से प्रकट है :
आगमो ह्याप्त वचनं आप्तं दोषक्षयं विदुः।
त्यक्तदोषोऽनृतं वाक्यं न ब्रूयाद्धेगत्वसंभवात्॥
रागाद्वा द्वेषाद्वा मोहाद्वा वाक्यमुच्यते ह्यनृतम्।
यस्य तु नैते दोषास्तस्यानृतककारणं नास्ति॥

3. जैसा कि तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक में दिये हुए श्री विद्यानंद आचार्य के निम्न वाक्य से प्रकट है :
"तेन गृहस्थस्य पंचाणुव्रतानि सप्तशीलानि गुणव्रत शिक्षाव्रत व्यपदेशभाञ्जीति द्वादशदीक्षाभेदाः सम्यक्तपूर्वकाः सल्लेखनान्ताश्च महाव्रत तच्छीलवत्।"

बोध-कथा

विद्या का घड़ा

किसी योद्धा की दरिद्रता के कारण बड़ी बुरी हालत हो गई। उसने खेती करनी शुरू की, लेकिन उसमें भी सफलता नहीं मिली।

अपने बुरे दिनों को देखकर उसे दुनिया से वैराग्य हो आया और घर छोड़कर वह इधर-उधर घूमने लगा। धन कमाने के लिए उसने अनेक उपाय किये, लेकिन सब निष्फल गये।

यह देखकर योद्धा घर लौटने का विचार करने लगा।

रास्ते में जाते-जाते एक देव-मन्दिर पड़ा और रात को वह वहाँ ठहर गया।

उसने देखा कि एक चित्र-विचित्र घड़ा लिये हुए कोई आदमी मन्दिर में से निकला और उस घड़े को एक ओर रखकर उसकी पूजा करते हुए कहने लगा, 'तू शीघ्र ही मेरे लिए सुन्दर शयनगृह बनाकर तैयार कर दे।'

क्षण भर में ही शयनगृह तैयार हो गया।

फिर उसने शयन, आसन,धन, धान्य और परिजन आदि की माँग की। उस घड़े के प्रताप से वे सब चीजें भी फौरन ही तैयार हो गयीं।

यह देखकर वह योद्धा सोचने लगा - इधर-उधर घूमने-फिरने से क्या लाभ? मैं क्यों न इस सिद्ध पुरुष को प्रसन्न करने का प्रयत्न करूं।

वह योद्धा सिद्ध पुरुष की सेवा-सुश्रूषा में लग गया।

सिद्ध-पुरुष ने प्रसन्न होकर पूछा, क्या चाहते हो?

योद्धा- मैं बड़ा अभागा हूँ। दरिद्रता के कारण बड़े कष्ट में हूँ। आपकी शरण में आया हूँ। आपकी दया से अपना दारिद्रय दूर करना चाहता हूँ।

सिद्ध पुरुष ने सोचा - यह बेचारा दरिद्रता के कारण बहुत दुखी है, अवश्य ही इसकी कुछ सहायता करनी चाहिए।

उसने कहा, 'बोलो, क्या चाहते हो? कोई विद्या चाहते हो या विद्या से अभिमन्त्रित घड़ा?'

योद्धा के माँगने पर सिद्धपुरुष ने उसे घड़ा दे दिया।

विद्या से अभिमन्त्रित घड़ा लेकर योद्धा अपने गाँव को चला।

उसने सोचा-ऐसी लक्ष्मी से क्या प्रयोजन जो विदेश में हो, जिसका मित्रगण उपभोग न कर सकें और जो शत्रुओं को दिखाई न दे।

यह सोचकर वह अपने गाँव आया तथा विद्या के बल से अपनी इच्छानुसार एक सुन्दर भवन बनवाकर अपने बन्धु और मित्रों समेत, बड़े आराम से समय-यापन करने लगा।

एक दिन उसने उस विद्या के घड़े को कन्धे पर रखा, और 'मैं इसके प्रभाव से अपने बन्धु-बान्धवों के बीच रहकर ऐश्वर्य का उपभोग करता हूँ,' यह कहता हुआ मदिरा पीकर वह नृत्य करने लगा।

योद्धा के नृत्य करते समय घड़ा फूट गया और वह विद्या के प्रताप से जो वह ऐश्वर्य का भोग करता था, वह ऐश्वर्य नष्ट हो गया।

योद्धा सोचने लगा कि अभिमन्त्रित घड़े की जगह यदि वह विद्या मांग लेता तो घड़ा फूट जाने पर भी वह आराम से रह सकता था। लेकिन अब क्या हो सकता था?

'दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिष्ठाशास्त्र और शासनदेव

पं. मिलापचन्द कटारिया

हमें अब तक के अन्वेषण से पता लगा है कि दिगम्बर सम्प्रदाय में जिन्होंने प्रतिष्ठाशास्त्रों का निर्माण किया है उनके नाम ये हैं-आशाधर, हस्तिमल्ल, इन्द्रनन्दि, वसुनन्दि, अर्यपार्य, वामदेव, ब्रह्मसूरि, नेमिचन्द्र और अकलंक। एकसन्धि और पूजासार के कर्ता तथा सोमसेन आदिकों के बनाये त्रिवर्णाचार व संहिताग्रन्थों में भी प्रतिष्ठासम्बन्धी कुछ प्रकरण पाये जाते हैं। इन सब में पं. आशाधरजी ही सबसे प्रथम हुए हैं अन्य सब उनके बाद के हैं। वसुनन्दिकृत संस्कृत प्रतिष्ठासारसंग्रह के विषय में धारणा थी कि यह आशाधर के पहिले का ग्रन्थ है। यह धारणा गलत है। इस सम्बन्ध में हमारा एक लेख ''वसुनन्दि और उनका प्रतिष्ठासारसंग्रह'' शीर्षक से इसी ग्रन्थ में देखिये जिसमें इसे आशाधर के बाद का सिद्ध किया गया है।

इन सब प्रतिष्ठाशास्त्रों में से सिर्फ आशाधरकृत और नेमिचन्द्रकृत दो प्रतिष्ठाशास्त्र ही मुद्रित हुए हैं। अन्य सब हाल भण्डारों की शोभा बढ़ा रहे हैं। जयसेनकृत प्रतिष्ठाशास्त्र जिसे वसुबिन्दुप्रतिष्ठापाठ भी कहते हैं यह भी मुद्रित हो चुका है, किन्तु इसे कुछ लोग आधुनिक और अप्रमाण मानते हैं, चूँकि इसके कई विषय ऊपर-लिखित सभी प्रतिष्ठापाठों से मेल नहीं खाते हैं इसलिए हमने भी इसे प्रस्तुत चर्चा से अलग कर दिया है। आशाधरप्रतिष्ठाशास्त्र की रचना वि.सं. 1285 में और नेमिचन्द्र प्रतिष्ठाशास्त्र की 16वीं शताब्दी में हुई है। ये नेमिचन्द्र ब्रह्मसूरि के भानजे लगते थे और विद्वान श्रावक थे। इन्होंने अपने प्रतिष्ठाशास्त्र का बहुत सा विषय आशाधर के प्रतिष्ठाशास्त्र के आधार पर लिखा है। यह बात दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से सहज ही प्रकट हो जाती है। अन्य प्रतिष्ठाशास्त्रों की जानकारी उनके प्रकाशित न होने से हमें न हो सकी है। तथापि हमारा अनुमान है कि उनमें भी बहुत करके आशाधर का ही अनुसरण किया गया होगा। हस्तलिखित वसुनन्दिकृत प्रतिष्ठासारसंग्रह हमारे देखने में आया है, उसमें बहुत कुछ आशाधर का अनुसरण ही नहीं किया है किन्तु कितने ही पद्य आशाधर के ज्यों के त्यों भी अपना लिये हैं। अब सवाल उठता है कि ये सब प्रतिष्ठाशास्त्र यदि आशाधर के बाद के हैं तो आशाधर ने अपना प्रतिष्ठाशास्त्र किस आधार पर रचा है? उनके पहिले का भी कोई प्रतिष्ठाग्रन्थ होना चाहिए। इस विषय में हमने जहाँ खोज की है, हम यह कह सकते हैं कि - 12 वीं सदी में होने वाले एक दूसरे वसुनन्दि जिन्होंने प्राकृत में ''उपासकाध्ययन'' ग्रन्थ रचा है जिसका प्रचलित नाम ''वसुनन्दिश्रावकाचार'' है। इस श्रावकाचार में प्रतिष्ठाविषयक एक प्रकरण है। इसमें करीब 60 गाथाओं में कारापक, इन्द्र, प्रतिमा, प्रतिष्ठाविधि और प्रतिष्ठाफल इन पाँच अधिकारों से प्रतिष्ठा सम्बन्धी वर्णन किया है। आकारशुद्धि, गुणारोपण, मन्त्रन्यास, तिलकदान, मुखवस्त्र और नेत्रोन्मीलन आदि कई मुख्य विषयों पर इसमें विवेचना की है। इसी को आधार बनाकर और शासनदेवोपासना आदि कुछ नई बातें मिलाकर पं. आशाधर जी ने अपना प्रतिष्ठाशास्त्र बनाया है। सागारधर्मामृत में भी आशाधर जी ने वसुनन्दिश्रावकाचार का बहुत कुछ उपयोग किया है। कुछ लोग समझते हैं कि - संस्कृतप्रतिष्ठासारसंग्रह के कर्ता भी ये वसुनन्दि हैं? ऐसा समझना भूल है। इन्होंने अगर संस्कृत का प्रतिष्ठाग्रन्थ जुदा ही बनाया होता तो ये फिर यहाँ साठ गाथाओं में प्रतिष्ठा का दुबारा कथन क्यों करते?

वसुनन्दिश्रावकाचार में आये प्रतिष्ठाविधि प्रकरण की एक खास विशेषता हमारी नजर में यह आई है कि इसमें किसी शासनदेव - देवी की उपासना का कहीं भी जिक्र नहीं है। यहाँ तक कि इसमें दिग्पाल आदिकों के नाम तक नहीं हैं। वसुनन्दि की इस प्रणाली का स्वयं आशाधर ने भी उल्लेख किया है। यथा-

जयाद्यष्टलान्येके कर्णिकावलयाद्बहिः।
मन्यन्ते वसुनंद्युक्त सूत्रज्ञैस्तदुपेक्षते॥ 175॥
(प्रतिष्ठासारोद्धार अध्याय 1)

अर्थ- कमल की कर्णिका के बाहर के आठ पत्तों पर जयादिदेवियों की जो कितने एक स्थापना मानते हैं। उसको वसुनन्दिप्रणीतसूत्र के ज्ञाताजन उपेक्षा करते हैं।

आगे हम पाठकों का ध्यान वसुनन्दि श्रावकाचार की प्रतिष्ठाविधि प्रकरण की निम्नगाथा पर ले जाते हैं-

आहरण वासियहिं
सुभूसियंगो सगं सबुद्धीए।
सक्कोहमिइ वियप्पिय
विसेज्ज जागावणिं इंदो॥ 404॥

इसमें लिखा है कि,- आभरण व सुगन्धि से भूषित हो, अपने आप को अपनी बुद्धि में 'मैं इन्द्र हूँ' ऐसा संकल्प

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करके वह इन्द्र यज्ञभूमि में प्रवेश करे।

इसी के अनुसार आशाधर ने अपने प्रतिष्ठाग्रन्थ में इन्द्रप्रतिष्ठाविधि का वर्णन करते हुए मुख्य पूजक में सौधर्मेन्द्र की स्थापना करना लिखा है। वसुनन्दि और आशाधर दोनों का कथन समान होते हुए भी, हमें आशाधर का कथन बेतुका जँचता है। वह इस तरह कि जब जिनयज्ञ के मुख्य पूजक को सौधर्मेन्द्र मान लिया गया तो वह यागमंडल में अपने से निम्न श्रेणी के देवों की स्थापना कर और 32 इन्द्रों में अपनी खुद की स्थापना करके उनकी पूजा कैसे कर सकता है? इसलिए आशाधर का यागमंडल की रचना में पंचपरमेष्ठी के अलावा दूसरे कई देव-देवियों की स्थापना कर उनकी पूजा सौधर्मेन्द्र से कराना असङ्गत-सा प्रतीत होता है और इन्द्रप्रतिष्ठा का विधान निरर्थक-सा होकर एक तरह का मखौल-सा हो जाता है। जबकि वसुनन्दि के कथन में ऐसी कोई आपत्ति ही खड़ी नहीं होती है। चूँकि उन्होंने प्रतिष्ठाविधि में कहीं शासनदेव पूजा को स्थान ही नहीं दिया है।

भगवान् के पूजक को इन्द्र का स्थानापन्न बताया जाना ही यह सिद्ध करता है कि पूज्य का स्थान इन्द्र से भी ऊँचा होना चाहिए। और वे अर्हंतादि ही हो सकते हैं। न कि व्यन्तरादि शासनदेव, जो इन्द्र से भी निम्नश्रेणी के हैं।

पं. आशाधरजी के बनाये ग्रन्थों का बारीकी से अध्ययन करनेवालों को पता लगेगा कि उनके खासकर श्रावकाचार साहित्य पर श्वेताम्बर साहित्य का प्रभाव पड़ा नजर आता है। इसके लिए हम पाठकों को श्वेताम्बराचार्य श्री हेमचन्द्रकृत योगशास्त्र स्वोपज्ञटीका को सागारधर्मामृत के सामने रखकर देखने का अनुरोध करते हैं। तब उन्हें पता लगेगा कि सागारधर्मामृत के कई एक स्थानों पर योगशास्त्र की साफ तौर पर छाया पड़ी हुई है। लेख विस्तार के भय से यहाँ हम उनके उद्धरण पेश करना नहीं चाहते हैं। इसी तरह आशाधर ने जो अपने प्रतिष्ठाग्रन्थ में कई देव-देवियों की भरमार की है और उनका विचित्र स्वरूप चित्रण किया है वह सब भी सम्भवतः उधार लिया गया प्रतीत होता है। ये देवी-देव प्रायः श्वेताम्बर पूजा-पाठों में भी उसी तरह पाये जाते हैं जैसे कि आशाधर ने लिखे हैं। आशाधर ने अपना प्रतिष्ठाशास्त्र नयी पद्धति से रचा है ऐसा वे खुद उनकी प्रतिष्ठा में लिखते हैं 'ग्रन्थः कृतस्तेन युगानुरूपः' अर्थात् उन आशाधर ने यह प्रतिष्ठाग्रन्थ वर्तमानयुग के अनुरूप बनाया है।

पुरानी कथनी के साथ भिन्न आम्नाय की नयी बातों को मिश्रण करने से आशाधर के बनाये प्रतिष्ठाशास्त्र में ही नहीं सागारधर्मामृत में भी कई एक स्थलों का कथन बेढंगा हो गया है जिसका जिक्र पं. हीरालालजी शास्त्री ने वसुनन्दि श्रावकाचार की प्रस्तावना में किया है। उन्हीं के शब्दों में पढ़िये-

'सागारधर्मामृत के तीसरे अध्याय में प्रथमप्रतिमा का वर्णन करते हुए आशाधरजी ने उसमें जुआ आदि सप्तव्यसनों का परित्याग आवश्यक बतलाते हैं और व्यसनत्यागी के लिए उनके अतीचारों के परित्याग का भी उपदेश देते हैं, जिसमें वे एक ओर तो वेश्याव्यसनत्यागी को गीत, नृत्य-वादित्रादि के देखने-सुनने और वेश्या के यहाँ आने-जाने या सम्भाषण करने तक का प्रतिबन्ध लगाते हैं। तब दूसरी ओर वे ही इससे आगे चलकर चौथे अध्याय में दूसरी प्रतिमा का वर्णन करते समय ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतीचरों की व्याख्या में भाड़ा देकर नियतकाल के लिए वेश्या को भी स्वकलत्र बनाकर उसे सेवन करने तक को अतीचारों बताकर प्रकारान्तर से उसके सेवन की छूट दे देते हैं।..... ये और इसी प्रकार के अन्य कुछ कथन पं. आशाधरजी द्वारा किये गये हैं, वे आज भी विद्वानों के लिए रहस्य बने हुए हैं और इन्हीं कारणों से कितने ही लोग उनके ग्रन्थों के पठन-पाठन का विरोध करते रहे हैं।'

जो लोग बड़े दर्प के साथ यह कहते हैं कि ऐसा कोई भी प्रतिष्ठा शास्त्र नहीं है जिसमें शासनदेव पूजा न लिखी हो, उन्हें अब मालूम होना चाहिए कि वसुनन्दि का प्रतिष्ठाप्रकरण जो उपलब्ध प्रतिष्ठा साहित्य में सबसे पहिले का है उसमें कतई शासनदेवों का कोई उल्लेख ही नहीं है।

जिन प्रतिष्ठाशास्त्रों के ये लोग प्रमाण देते हैं वे तो सब आशाधर के बाद के बने हुए हैं और उनके कर्ताओं ने प्रायः आशाधर का ही अनुसरण किया है। और आशाधर ने अपना प्रतिष्ठाशास्त्र नयी शैली से लिखा है जैसा कि ऊपर हम बता आये हैं। अर्थात् वसुनन्दि के प्रतिष्ठा सम्बन्धी मुख्य विधि-विधानों को लेकर और उनके साथविचित्र रूपधारी देव-देवियों की पूजा रचकर आडम्बर पूर्ण प्रतिष्ठाग्रन्थ आशाधर ने रचा है। इस रचना को आशाधर ने युगानुरूप रचना बतायी है। इससे साफ प्रकट होता है कि शासनदेव की रीति प्रतिष्ठाविधि में प्रधानतया आशाधर की चलाई हुई है और इसलिये यह रीति इनके पूर्व होनेवाले वसुनन्दि के प्रतिष्ठाप्रकरण में नहीं पायी जाती है। अतः बेखटके कहा जा सकता है कि आशाधर के पहिले का ऐसा कोई प्रतिष्ठाशास्त्र हो तो बताया जावे जिसमें शासनदेव की पूजा लिखी हो।

'जैन निबन्धरत्नावली' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा- समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

जिज्ञासा - तीसरे व चौथे स्वर्ग के देवों के स्पर्श से प्रवीचार कहा है तो क्या इससे ऊपर के स्वर्ग के देव अपनी देवियों को स्पर्श नहीं करते हैं? क्या वे अपनी देवियों के गीत नहीं सुनते हैं?

समाधान- भगवान ऋषभदेव अपने पिछले चौथे भव में अच्युत स्वर्ग के इन्द्र थे। उनका वर्णन करते हुए आदिपुराण भाग-1, पृष्ठ 225 पर इस प्रकार कहा है- ''उस अच्युत स्वर्ग के इन्द्र की आठ महादेवी तथा 63 बल्लभादेवी थीं। एक-एक महादेवी अढ़ाईसौ-अढ़ाईसौ अन्य दूसरी देवियों से घिरी रहती थीं। इस प्रकार सब मिलाकर 2071 देवी थीं। इन देवियों का स्मरण करने मात्र से ही उस अच्युत इन्द्र की काम व्यथा नष्ट हो जाती थी। वह इन्द्र उन देवियों के कोमल हाथों के स्पर्श से, मुखकमल देखने से और मानसिक संभोग से अत्यंत तृप्ति को प्राप्त होता था।... जिनके वेष बहुत ही सुंदर हैं, जो उत्तम आभूषण एवं सुंगधित मालाओं से सहित हैं, जो मधुर शब्दों से गा रही हैं, ऐसी देवांगनाएं उस अच्युत इन्द्र को बड़ा आनन्द प्राप्त करा रही थी। जिनके मुख कमल के समान सुंदर हैं ऐसी देवांगनाएं अपने मनोहर चरणों के गमन, भौंहों के विकार, सुंदर दोनों नेत्रों के कटाक्ष, अंगोपांगों की लचक, सुन्दर हास्य, स्पष्ट और कोमल हाव आदि अनेक भावों के द्वारा उस अच्युत इन्द्र का मन ग्रहण करती रहती थीं। वह अच्युत इन्द्र भी उनके नेत्रों के कटाक्षों से घायल हुए अपने हृदय को उन्हीं के कोमल हाथों के स्पर्श से धैर्य बंधाता था आदि।''

उक्त प्रकरण से यह स्पष्ट है कि यद्यपि वह अच्युत इन्द्र अपनी देवियों को स्पर्श करता था, उनका रूप देखता था, उनके गीत आदि सुनता था परन्तु इस सबसे उसकी काम-वासना का कोई संबंध नहीं था। ये तो उसके भोगोपभोग के साधन थे। उसकी कामवासना तो स्मरण मात्र से ही शांत हो जाती थी।

जिज्ञासा - क्या सभी अकृत्रिम जिनालय समान आकार वाले ही होते हैं?

समाधान - आगम में जिनालय तीन आकार वाले कहे गये हैं। उनमें उत्कृष्ट आकार वाले जिनालय 100 योजन लम्बे, 50 योजन चौड़े और 75 योजन ऊँचे होते हैं। मध्यम आकार वाले 50 x 25 x $37\frac{1}{2}$ योजन होते हैं और जघन्य आकार वाले 25 योजन लम्बे, $12\frac{1}{2}$ योजन चौड़े और पौने 19 योजन ऊँचे होते हैं। इन सब जिनालयों की नींव जमीन में आधे-आधे योजन होती है। भद्रशाल वन, नन्दनवन, नन्दीश्वरदीप और स्वर्ग के विमानों में उत्कृष्ट आकार वाले जिनालय हैं। सौमनसवन, रूचिकगिरी, कुण्डलगिरी, वक्षारगिरी, इष्वाकार पर्वत, मानुषोत्तर पर्वत और कुलाचलों पर मध्यम आकार वाले जिनालय हैं। पाण्डुक वन में जघन्य आकार वाले जिनालय हैं। विजयार्ध पर्वत, जम्बूद्वीप तथा शाल्मली वृक्ष पर जिनालयों की लम्बाई एक कोश प्रमाण है। इसके अतिरिक्त भवनवासी देवों के भवनों में तथा व्यंतर एवं ज्योतिषी देवों के निवास स्थानों पर अलग-अलग आकार के जिनालय हैं। इनका विशेष वर्णन तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ से जानना चाहिए।

जिज्ञासा - असिद्धत्व भाव औदयिक कहा गया है तो यह किन कर्मों के उदय से होता है?

समाधान - श्री राजवार्तिक अध्याय-2, सूत्र-6 की टीका में इस प्रश्न का समाधान इस प्रकार कहा गया है- **''अनादि कर्मबन्धसन्तानपरतन्त्रस्यात्मनः कर्मोदय सामान्ये सति असिद्धत्पर्यायो भवतीत्यौदयिकः। स पुनर्मिथ्यादृष्टयादिषु सूक्ष्मसाम्परायिकान्तेषु कर्माष्टकोदयापेक्षः, शान्तक्षीणकषाययोः सप्तकर्मोदयापेक्षः सयोगिकेवल्ययोगि केवलिनोर घातिकर्मोदयापेक्षः।**

अर्थ- अनादिकर्मबंध परम्परा से परतन्त्र आत्मा के कर्म उदय सामान्य होने पर असिद्धत्व पर्याय होती है; जो औदयिक है। वह पर्याय मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान तक आठों कर्मों के उदय अपेक्षा कही गई है। मोहनीय कर्म का अभाव होने से उपशांत कषाय एवं क्षीणकषाय गुणस्थानों में शेष सात कर्मों की अपेक्षा कही गई है तथा सयोगकेवली एवं अयोगकेवली गुणस्थान में अघातिया कर्मों की अपेक्षा कही गई है।'' इस प्रकार असिद्धत्व भाव को औदयिक समझना चाहिए।

जिज्ञासा - वर्षा ऋतु में पत्ते या पत्ती वाले शाक खाना चाहिए या नहीं?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाधान - श्रावकों के लिए श्रावकाचारों में इस संबंध में दो प्रकार के उद्धरण मिलते हैं, कुछ के अनुसार तो व्रती श्रावक को आजीवन पत्तों वाले शाक नहीं खाना चाहिए जबकि कुछ ग्रन्थों में वर्षा ऋतु में तो इनको बिल्कुल अभक्ष कहा है। कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं-

1. श्री धर्मसंग्रहश्रावकाचार में इस प्रकार कहा है-

प्रावृषि द्विदलं त्याज्यं सकलं च पुरातनम्।
प्रायश: शाकपत्रं च नाहरेत्सूक्ष्मजन्तुमत्॥ 22॥

अर्थ - वर्षाकाल में सम्पूर्ण द्विदल धान्य मूँग, चना, उड़द, अरहर आदि तथा पुराना धान्य नहीं खाना चाहिए। क्योंकि वर्षा समय में बहुधा करके इनमें जीव पैदा हो जाते हैं। **इसी तरह पत्तों वाला शाक भी नहीं खाना चाहिए।** क्योंकि इसमें भी त्रस जीव पैदा हो जाते हैं।

2. श्री प्रश्नोत्तर श्रावकाचार में इस प्रकार कहा है-

पत्रशाकं त्यजेद्धीमान पुष्पं कीट समन्वितम्।
ज्ञात्वा पुण्याय जिह्वादिदमनाया शुभप्रदम्॥ 102॥

अर्थ - बुद्धिमानों को पुण्य सम्पादित करने, जिह्वा आदि इन्द्रियों को दमन करने के लिए पाप उत्पन्न करने वाले पत्तों वाले शाक व कीड़ों से भरे हुए पुष्प आदि सबको त्याग कर देना चाहिए।

3. श्री सागारधर्मामृत में इस प्रकार कहा है -

वर्षास्वदलितं चात्र पत्रशाकं च नहरेत्॥ 5/18

अर्थ - वर्षाऋतु में पत्र-शाक नहीं खाना चाहिए।

4. श्रावकाचार संग्रह-भाग 3, लाटीसंहिता पृष्ठ-5, पर इस प्रकार कहा है। **अर्थ**-पत्ते वाली शाक भाजी कभी न खायें।

5. श्रावकाचार संग्रह, भाग 3, उमास्वामी श्रावकाचार पृष्ठ-178 पर इस प्रकार कहा है **: अर्थ** - जामुन, पत्ते के शाक, सुआ, पालक तथा कोपलें अभक्ष्य हैं।

6. श्रावकाचार संग्रह भाग 3, पूज्यपाद श्रावकाचार पृष्ठ-194 पर इस प्रकार कहा है। अर्थ - ''पत्तों के शाक अभक्ष्य हैं इनको छोड़ना चाहिए।''

7. श्रावकाचार संग्रह भाग 3, व्रतोद्योतन श्रावकाचार, पृष्ठ - 231 पर इस प्रकार कहा है। **अर्थ** - पत्ते के शाक कभी न खायें।

8. श्रावकाचार संग्रह भाग 3,पुरुषार्थानुशासन श्रावकाचार, पृष्ठ-503, पर इस प्रकार कहा है **: अर्थ** - ''सभी प्रकार के पत्तों के शाक कभी न खायें।''

9. रत्नकरण्डश्रावकाचार टीका पं. सदासुखदास जी, पृष्ठ - 131 पर कहा है। **अर्थ** - वनस्पति में अनेक त्रस जीवनि का संसर्ग उत्पत्ति जान जे जिनेन्द्र धर्म धारण करि पापन ते भयभीत हैं ते समस्त ही हरितकाय का त्याग करो, जिव्हा इन्द्रिय को वश करो। अर जिनका समस्त हरितकाय के त्यागि करने का सामर्थ्य नाहिं है, ते कंदमूलादिक अनन्तकाय को यावत् जीवन त्याग करो। अर जे पंचउदम्बरादिक प्रकट त्रस जीवनि करि भरया है, ऐसा फल-पुष्प, शाक-पत्रादिकनकूं छांड़िकरिकें त्रस घाति कर रहित दीखे ऐसी तरकारी, फलादिक दश-बीस कूं अपने परिणामिन के योग्य जानि नियम करो। हरित काय प्रमाणीक का नियम करैं ताकें करोड़ों अभक्ष टलैं हैं, तिसमें पत्र जाति भक्षण योग्य नाहिं।''

10. किशनसिंहश्रावकाचार पृष्ठ - 16 पर कहा है-

शाक पत्र सब निंद बखानि, कुंथादिक करि भरया जानि।
मांस त्यजनि व्रत राखो चहे, तो इन सबको कबहूँ न गहे।

अर्थ - पत्ते वाली सब शाक निन्दनीय कही गई हैं, वे चींटी आदिक जीवों से भरे हुए जानना चाहिए। यदि माँस त्याग व्रत की रक्षा चाहते हो तो इन सबको कभी ग्रहण न करो।

इसके अलावा अन्य भी बहुत से प्रमाण हैं। इस समाधान के पाठकों से निवेदन है कि वे पत्ती वाले शाक, यदि उचित समझें तो आजीवन त्याग करें अथवा वर्षा ऋतु के चार माह तो त्याग करें ही करें। वर्तमान में कुछ मुनिराज पत्ती वाले शाक आहार में लेते हैं। परन्तु उपरोक्त सभी प्रमाणों द्वारा पत्ती वाले शाक खाने में त्रस जीवों की हिंसा का दोष बताते हुए जब श्रावकों को भी उनके खाने का निषेध किया है, तब फिर अहिंसा महाव्रत के धारी मुनिराजों के लिए तो पत्ती वाले शाक नितान्त अभक्ष हैं। बुद्धिमान श्रावक को, मुनि के लिए दिए जाने वाले आहार में, पत्ती वाले शाक कदापि नहीं बनाने चाहिए।

जिज्ञासा - रुद्र कौन होते हैं और क्या ये भी निकट भव्य होते हैं?

समाधान - श्री सिद्धान्तसार दीपक अधिकार -9, श्लोक नं. 263-272 में इस प्रकार कहा है - ''रौद्र परिणामी ये सभी रुद्र जैनेन्द्री दीक्षा को नष्ट कर देने वाले मुनि आर्यिकाओं के पुत्र हैं। ये सभी दैगम्बरी दीक्षा धारण करके विद्यानुवाद नामक दशवें पूर्व को पढ़ते हैं, इससे इन्हें विद्याओं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की प्राप्ति होती है, उससे इनकी आत्मा चलायमान हो जाती है, और विषयों में आसक्त दुर्बुद्धि से अपने ग्रहण किए हुए दर्शन, ज्ञान और संयम को छोड़कर दीक्षा भंग के महान पाप से यथोचित नरकों को प्राप्त करते हैं॥ 263-264॥ दीक्षा भंग के पाप से भीम और बलि ये दो रुद्र सप्तम नरक को प्राप्त हुए हैं। जितारि, विश्वानल, सुप्रतिष्ठ, अचल और पुण्डरीक ये पाँच रुद्र रत्नत्रय एवं तप के परित्याग से छठवें नरक को प्राप्त हुए॥ 265-266॥ अजितन्धर नाम का रुद्र पाँचवें नरक, जितनाभि और पीठ ये दो रुद्र चौथे नरक तथा सात्विकीतनय तीसरे नरक को प्राप्त हुए हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान एवं संयम से विभूषित ये सभी तपस्वी (रुद्र) दीक्षाभंग से उत्पन्न होने वाले पाप के समूह से ही इस प्रकार की दुर्गति को प्राप्त होते हैं, इसलिए मैं ऐसा मानता हूँ कि इस पृथ्वी पर तीन लोक में दीक्षा भंग बराबर महान् पाप, अपमान, निन्द्यपना एवं निर्लज्जता न कभी (अन्य क्रियाओं से) भूतकाल में थी, और न कभी भविष्यत्काल में होगी। त्रैलोक्य में बुद्धिमानों के द्वारा सारभूत अति दुर्लभ रत्न चारित्र ही माना गया है। अतः अति निर्मल चारित्र के समीप स्वप्न में भी मल नहीं लाना चाहिए। अर्थात् ग्रहण किये हुए चारित्र में स्वप्न में भी दोष नहीं लगाना चाहिए। ॥ 267-271॥ इन सभी रुद्रों को अनेक भवान्तरों के बाद प्राप्त किए हुए सम्यक्त्व से चारित्र होगा और चारित्र के द्वारा इन्हें निर्वाण की प्राप्ति होगी॥ 272॥''

1/205, प्रोफेसर कॉलोनी, आगरा- 282002

बालवार्ता

जीना है तो पीना नहीं

डॉ. सुरेन्द्र जैन

प्रायः मैं यह निर्णय ही नहीं कर पाता कि मुझे दूसरों के यहाँ मजदूरी करके अपना पेट भरना पड़ रहा है, पूरा परिवार भी मुझ पर आश्रित है, यह मेरे किस पाप कर्म का परिणाम है? क्या मैंने कोई पुण्य नहीं किया? क्या मैं कोई श्रम नहीं करता? यह प्रश्न रामू के मस्तिष्क में बार- बार कोंध रहे थे कि सहसा कारखाने की घंटी बजी और सब मजदूरों के साथ रामू को भी काम से छुट्टी मिल गयी।आज वह बहुत प्रसन्न था क्योंकि आज मजदूरी (वेतन) मिलने वाली थी। 60/- रु. रोज के हिसाब से उसे मजदूरी मिलती थी। महीने में चार अवकाश रविवार को छोड़कर 26 दिन के उसे 1560/- रु. मिलने वाले थे, जिनमें से वह 1200/ - रु. पहले ही पत्नी की बीमारी के नाम पर एडवान्स (अग्रिम) कारखाने से ले चुका था, यह उसे तभी याद आया जब वेतन बाँटने वाले ने उसे 360/- रु. ही पकड़ाये। रुपये पाकर पहले तो वह थोड़ा सा खिन्न हुआ कि इतने कम रुपये ही मिले? अगले ही क्षण वह सोचने लगा कि अपनी इस थकान को कैसे मिटाये? क्या प्लान कर अच्छा भोजन करे? क्या मन्दिर जाकर देवता का भजन करे और सो जाये? क्या बच्चों के लिए खिलौने या मिठाई खरीदे? पत्नी के लिए साड़ी ले ले तो उसकी शिकायत मिट जायेगी कि वह उसे कुछ नहीं देता। रामू यह सोच ही रहा था कि कोई शराबी (शराबघर) से यह गीत गाता हुआ निकला- 'जीना यहाँ, मरना यहाँ, इसके सिवा जाना कहाँ?' बस रामू ने यह गीत सुना और क्षण भर में बिना बिचारे शराबखाने में घुस गया और शराब में डूबता गया। उसे यह याद ही नहीं रहा कि कब उसने उन 360/- रु. की शराब पी डाली है, जो उसे मजदूरी के बदले मिले थे। शराब की खुमारी चढ़ती जा रही है। उससे उठा भी नहीं जा रहा है, थकान बढ़ती जा रही है। वह याद करता है- 'जीना यहाँ, मरना यहाँ.....' पर क्या हुआ- वह तो न जी पा रहा है, न मर पा रहा है। चले भी तो कैसे? इतने में शराबखाने का नौकर बेसुध जानकर बाहर पटक देता है। बाहर जोर की बारिश हो रही है। बारिश का पानी पड़ते ही वह थोड़ा-थोड़ा होश में आने लगता है। इतने में एक शराबी की दशा का वर्णन करते हुए संत ध्वनि निकलती है-

'दिन भर धूप का पर्वत काटा, शाम को पीने निकले हम।
जिन गलियों में मौत छुपी थी, उनमें जीने निकले हम॥'

सूर्योदय के साथ ही रामू भी चेतना पा चुका था। उसने तय किया था कि अब वह कभी 'शराब' नहीं पिएगा। आखिर जीने के लिए 'पीना' क्या जरूरी है?

एल- 65, न्यू इन्दिरा नगर, बुरहानपुर (म. प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कविवर भागचन्द रचित भजन

संकलन : पं. सुनील जैन शास्त्री

प्रभूपै यह वरदान सुपाऊं, फिर जगकीच बीच नहीं आऊं ॥ टेक ॥

अर्थ - प्रभु! मैं आपसे यही वरदान पाना चाहता हूँ कि अब मैं इस जग-कीच में, संसार में न आऊँ, अब मैं जन्म-मरण के दु:खों से मुक्त हो जाऊँ और संसार में मेरा फिर जन्म न हो।

जल गंधाक्षत पुष्प सुमोदक, दीप धूप फल सुन्दर ल्याऊं।
आनंदजनक कनकभाजन धरि, अर्घ अनर्घ बनाय चढ़ाऊं॥ 1॥

अर्थ - जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प नैवेद्य, दीप, धूप, फल इस प्रकार अष्ट द्रव्य लाकर सुन्दर स्वर्ण-पात्रों में सजाकर उनका अर्घ्य बनाकर, उनसे इसी भावना से पूजा करूँ कि अब इस संसार-सागर में मेरा फिर जन्म न हो।

आगमके अभ्यासमाहिं पुनि, चित एकाग्र सदैव लगाऊं।
संतन की संगति तजिकै मैं, अंत कहूं इक छिन नहिं जाऊं॥ 2॥

अर्थ- मैं एकाग्र होकर आगम के अध्ययन में चित्त लगाऊँ, स्वाध्याय करूँ और संयम की चर्या को अपनाऊँ। संतजनों की संगति, उनका सान्निध्य छोड़कर एक क्षण के लिए भी अन्य की शरण में नहीं जाऊँ।

दोषवादमें मौन रहूं फिर, पुण्यपुरुषगुन निशिदिन गाऊं।
मिष्ट स्पष्ट सबहिसों भाषौं, वीतराग निज भाव बढ़ाऊं॥ 3॥

अर्थ - दोषपूर्ण वाद-विवाद में, मैं सदा शान्त रहूँ। श्रेष्ठ व पवित्र पुरुषों के गुणों का चिन्तवन करूँ, उनकी प्रशंसा, गुणगान करूँ। सदैव हित-मित व स्पष्ट वचन ही मुख से बोलूँ और राग-द्वेष रहित, वीतराग भावों में दृढ़ता व वृद्धि करूँ।

बाहिजदृष्टि ऐंचके अन्तर, परमानन्दस्वरूप लखाऊं।
'भागचन्द' शिवप्राप्त न जौलौं, तों लौं तुम चरनांबुज ध्याऊं॥ 4॥

अर्थ - बाहर की ओर से दृष्टि हटाकर निज-स्वरूप का, आत्म-स्वरूप का चिन्तन करूँ। कवि भागचन्द यह भावना करते हैं कि जब तक मुझे मोक्ष की प्राप्ति न हो तब तक आपके चरणकमल का ही स्मरण करूँ।

962, सेक्टर 7, आवास विकास कालोनी, आगरा (उ.प्र.)
फोन- 0562- 2277092

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निवास : 0755-5292462
2661592
कार्यालय : 0755-592461
फैक्स : 0755- 5292463

मध्यप्रदेश राज्य अल्पसंख्यक आयोग

"ई" ब्लाक, पुराना सचिवालय, भोपाल (म.प्र.) 462001
E-mail : minoritiescommission@rdiffmail.com **Website** : www.mpsmc.com

मो. इब्राहिम कुरैशी
अध्यक्ष
(मंत्री दर्जा)

पत्र क्रमांक/356/2004
दिनांक 28/7/2004

विषय : गुजरात स्थित भगवान नेमीनाथ की निर्वाण भूमि जैन सिद्ध क्षेत्र श्री गिरनार जी जिला जूनागढ़ की पांचवीं टोंक पर अनाधिकृत निर्माण हटाने एवं उपासना स्थल का स्वरूप बदलने के विरूद्ध तत्काल कार्रवाई/हस्तक्षेप बाबत्।

गुजरात में स्थित भगवान नेमीनाथ की निर्वाण भूमि जैन सिद्ध क्षेत्र पर्वत की पांचवीं टोंक पर छतरियां एवं देरियों का निर्माण श्री बंडीलाल जी दिगम्बर जैन कारखाना ट्रस्ट द्वारा किया गया था। बिजली गिरने से टूट गई इन देरियों एवं छतरियों का पुनः निर्माण तत्कालीन नवाब साहब की अनुमति से 1902 एवं 1914 में किया गया था। यह धार्मिक स्थल ऐतिहासिक पुरातत्त्व महत्व का होकर पुरातत्त्व विभाग की सूची में शामिल है तथा संरक्षित क्षेत्र है तथा प्राचीन स्मारक तथा पुरातत्त्वीय स्थल और अवशेष अधिनियम - 1958 के तहत बने नियम - 1959 तथा इसके पूर्ववर्ती अधिनियमों के तहत नोटीफाइड है।

प्राचीन स्मारक तथा पुरातत्त्वीय स्थल और अवशेष अधिनियम-1958 में उसके धार्मिक स्वरूप एवं उपयोग की स्थिति को यथावत रखा गया है। इसके दुरूपयोग किए जाने, प्रदूषित किए जाने, अपवित्र किए जाने से पूजा का संरक्षण इस अधिनियम की धारा-16 में हैं। इसी अधिनियम में ऐसे संरक्षित ऐतिहासिक महत्व के प्राचीन स्मारकों में अनाधिकृत प्रवेश अथवा स्वरूप बदलने की स्थिति में धारा-30 के तहत शास्तियां (दण्ड) दिए जाने की व्यवस्था है।

साथ ही यदि जो धार्मिक क्षेत्र संरक्षित ऐरिया से हटकर है यदि उसके स्वरूप को बदला जाता है तब पूजा स्थल विशेष उपबंध अधिनियम-1991 के तहत स्वरूप बदलने वाले व्यक्ति के खिलाफ कार्रवाई की जा सकती है तथा अवैधानिक निर्माण को रोका जा सकता है।

अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभा का ज्ञापन संलग्न है इसके अलावा मध्यप्रदेश राज्य से घोषित जैन अल्पसंख्यक समुदाय के विभिन्न संगठनों/प्रतिनिधियों ने आयोग से भेंट कर अवगत कराया है कि इस पवित्र स्थल पर कुछ लोगों द्वारा अनाधिकृत रूप से कब्जा कर स्वरूप बदलने का प्रयास जारी है। इस संबंध में गुजरात राज्य शासन का ध्यान भी आकृष्ट कराया है लेकिन गुजरात शासन इस मामले में कोई कार्रवाई नहीं कर रही है। ऐसी स्थिति में अल्पसंख्यक जैन समुदाय की भावनाओं को ठेस पहुंच रही है तथा केन्द्र सरकार का हस्तक्षेप आवश्यक है। पुरातत्त्व महत्व के इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संरक्षित धार्मिक क्षेत्र में दूसरे धर्म के धार्मिक स्थलों के निर्माण की इजाजत गुजरात सरकार द्वारा किस प्रकार दी गई। यह भी गलत है, कानून का उल्लंघन है। भारतीय पुरातत्त्व एवं सर्वेक्षण विभाग, नई दिल्ली (संस्कृति मंत्रालय) जिसे हस्तक्षेप करना चाहिए वो भी इस मामले में निष्क्रियता अपनाये हुए है।

अत: मध्यप्रदेश राज्य अल्पसंख्यक आयोग की ओर से मेरा आग्रह है कि अल्पसंख्यक जैन समुदाय को इस धार्मिक स्थल की सुरक्षा हेतु भारतीय पुरातत्त्व एवं सर्वेक्षण विभाग नई दिल्ली (संस्कृति मंत्रालय) तथा गुजरात सरकार को स्पष्ट निर्देश देने का कष्ट करें। इस अवैध निर्माण कार्य की जाँच केन्द्र सरकार के खुफिया विभाग सी.बी.आई. से भी कराई जाए।

आपका

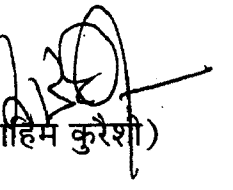

(इब्राहिम कुरैशी)

प्रति,
डॉ. मनमोहन सिंह,
प्रधानमंत्री,
भारत सरकार,
7, रेसकोर्स रोड,
नई दिल्ली

प्रति,
श्रीमती सोनिया गांधी,
माननीय अध्यक्ष
अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ''ई''
10, जनपथ, नई दिल्ली

प्रति,
श्री शिवराज पाटिल,
माननीय गृहमंत्री,
भारत सरकार,
नई दिल्ली

प्रति,
माननीय श्री दिग्विजय सिंह,
पूर्व मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश
महासचिव
अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी
''ई''
नई दिल्ली

प्रति,
श्री तरलोचन सिंह,
माननीय अध्यक्ष, राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग
आयोग
नई दिल्ली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वतंत्रता संग्राम में जैन(द्वितीय एवं तृतीय खण्ड)

सामग्री भेजने हेतु
विनम्र निवेदन

शिक्षक आवास 6
श्री कुन्दकुन्द जैन (पी. जी.) कालेज परिसर खतौली- 251201
जिला- मुजफ्फर नगर (उ. प्र.) फोन नं. 01396-273339

शोधकर्ता
डॉ. कपूरचंद जैन
डॉ.(श्रीमती)ज्योति जैन

पत्रांक न्यास/सं./दिनांक

समादरणीय धर्मानुरागी श्रीमान्/श्रीमती
महामान्य,

भारत के सांस्कृतिक,सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक, आर्थिक, राजनैतिक क्षेत्र में जैन समाज का योगदान अविस्मरणीय है। भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में भी इस समाज ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था। अनेक जैन शहीद हुए व लगभग पांच हजार जैन जेल गये थे। इसी योगदान को रेखांकित करने के लिए उक्त ग्रंथ को तीन खण्डों में प्रकाशित करने की योजना बनाई गई थी, जिसमें प्रथम खण्ड का प्रकाशन हो चुका है। प्रथम खण्ड में बीस जैन शहीदों, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश व राजस्थान के 650 जैन यात्रियों, संविधान सभा के सदस्यों आदि का परिचय है तथा 250 फोटोग्राफ भी हैं।

आगे के दो खण्डों में उक्त प्रदेशों के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों के जैन स्वतंत्रता सेनानियों तथा अन्य प्रकार से आन्दोलन में भाग लेने वालों का सचित्र और सप्रमाण परिचय प्रकाशित किया जाना है। आपसे विनम्र निवेदन है कि आपके नगर/ग्राम/जिला में या आपके रिश्तेदार, जो भी जैन स्वतंत्रता सेनानी हों, उनका परिचय उक्त पते पर शीघ्र भेजकर अनुगृहीत करें या उनके परिवारों से सामग्री उक्त पते पर भिजवाने की कृपा करें। आपके नाम का साभार उल्लेख ग्रन्थ में किया जायेगा। सामग्री निम्न प्रारूप में भेजें।

1. जैन स्वतंत्रता सेनानी का नाम-
2. पिता का नाम-
3. जन्म स्थान तथा जन्म तिथि-
4. वर्तमान पता(यदि हो तो) फोन नं.
5. जेल यात्रा/भूमिगत रहने का समय-
6. जेल यात्रा का संस्मरण/अनुभव यदि हो तो -
7. यदि स्वर्गवास हो गया हो तो तिथि-
8. किसी ग्रन्थ/स्मारिका/अखबार में स्वतंत्रता सेनानी का परिचय , चित्र, विवरण छपा हो तो उसकी प्रति या फोटोकापी-

सामग्री जो भेजनी है
1. स्वतंत्रता सेनानी का परिचय
2. पासपोर्ट साइज का फोटो
3. किसी राष्ट्रीय नेता के साथ चित्र (यदि हो)
4. स्वतंत्रता सेनानी होने का प्रमाण, यथा ताम्रपत्र, रेलपास, जेल यात्रा का प्रमाण पत्र, पेन्शन पत्र आदि की फोटोकापी
5. कोई पुस्तक/स्मारिका/समाचार पत्र, जहां सेनानी का परिचय छपा है (यदि हो)

आपसे सहयोग की आकांक्षा के साथ,
निवेदक
डॉ. कपूर चंद जैन
डॉ. ज्योति जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाचार

गिरनार पर्वत पर विशेष

जैन समाज के साथ पूरा न्याय होगा-नरेन्द्र मोदी

जैन धर्म के 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ भगवान की निर्वाण स्थली गिरनार पर्वत की 5वीं टोंक के मूल स्वरूप में अभी हाल में ही किये गये अनाधिकृत परिवर्तन/निर्माण को हटाये जाने के संबंध में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, मुंबई के नेतृत्व में समाज की सभी राष्ट्रीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों के एक प्रतिनिधिमंडल ने शनिवार 21 अगस्त, 2004 को गुजरात के मुख्यमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी से भेंट की। कमेटी के उपाध्यक्ष श्री नरेश कुमार सेठी के नेतृत्व में प्रतिनिधि मण्डल में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ संरक्षिणी महासभा के अध्यक्ष श्री निर्मल कुमार सेठी, दिगम्बर जैन महासमिति गुजरात प्रांत के अध्यक्ष अमृतभाई मेहता, तीर्थक्षेत्र कमेटी के महामंत्री श्री अरविन्द रावजी दोशी, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद की ओर से श्री रतनलाल नृपत्या, श्री बंडीलालजी दिगम्बर जैन कारखाना (ट्रस्ट) जूनागढ़ की ओर से श्री सुरेश जैन तथा गुजरात की अन्य संस्थाओं के प्रतिनिधि शामिल थे।

प्रतिनिधि मण्डल ने मुख्यमंत्री को जैन धर्मानुयायियों के लिए गिरनार पर्वत की महत्ता और उस पर सदियों से जैन धर्मानुयायियों द्वारा की जा रही पूजा अर्चना की जानकारी देते हुए बताया कि इस वर्ष अप्रैल-मई माह में कतिपय अराजक तत्त्वों द्वारा किये गये अनाधिकृत निर्माण और भगवान नेमिनाथ के चरण चिन्ह के पीछे दत्तात्रेय की नई मूर्ति स्थापित करने तथा भगवान नेमिनाथ की पर्वत पर उकेरी मूर्ति से छेड़छाड़ करने संबंधी कार्यवाहियों से जैन धर्मानुयायियों में भारी आक्रोश है। प्रतिनिधिमंडल ने अपने आस्था स्थल पर किये गये अनाधिकृत एवं अवैधानिक निर्माण को हटाकर पुनः पूर्व स्थिति कायम करने की प्रार्थना की। प्रतिनिधि मंडल ने यह भी बताया कि 'द प्लेसेज ऑफ वर्शिप (स्पेशल प्रोविजन्स) एक्ट 1991' के प्रावधानों के कारण किसी प्रकार का फेरबदल नहीं किया जा सकता। माननीय मुख्यमंत्री जी ने प्रतिनिधि मंडल को पूरे ध्यान के साथ सुना और यह आश्वस्त किया कि उनकी सरकार जैन धर्मानुयायियों के साथ गिरनार पर्वत पर किसी प्रकार का अन्याय नहीं होने देगी।

जैन समाज की प्रतिनिधि संस्थाओं के इस प्रतिनिधि मंडल ने मुख्यमंत्री जी के प्रति इस आश्वासन के लिए आभार व्यक्त किया।

प्रतिनिधि मंडल ने गुजरात के नव नियुक्त राज्यपाल महामहिम पंडित नवल किशोर जी शर्मा से भी भेंट की और उन द्वारा पूर्व में उनसे भेंट करने आये प्रतिनिधि मंडलों के ध्यान आकर्षित करने पर सरकार द्वारा त्वरित निदानात्मक कदम उठाये जाने एवं आगामी सकारात्मक कार्यवाही के प्रति आश्वस्त किये जाने पर, समूचे जैन समाज की ओर से आभार एवं कृतज्ञता ज्ञापित की गई।

व्यवस्थापक, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी

प.पू. मुनि श्री समतासागर जी का पावन वर्षायोग

'अतिशय पूर्ण बड़े बाबा देवाधिदेव श्री 1008 पार्श्वनाथ जी भगवान' से शोभायमान धर्मविद्नगरी सिवनी में परमपूज्य दिगम्बर जैन आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परमप्रभावक शिष्यद्वय 'परमपूज्य मुनिवर श्री 108 समतासागर जी महाराज एवं परमपूज्य ऐलक श्री 105 निश्चयसागर जी महाराज का चातुर्मास सम्पन्न हो रहा है।

नोट : सिवनी राष्ट्रीय राजमार्ग क्रम. 7 पर नागपुर-जबलपुर के मध्य स्थित है। नगर में तीन भव्य जिनालय हैं।

संपर्क सूत्र :

- **श्री दिग. जैन पंचायत कमेटी, दिग. जैन धर्मशाला सिवनी, फोन - 07692- 220748**
- **डॉ. धरम चन्द्र जैन, संयोजक-चातुर्मास कमेटी, सिवनी, फोन - 07692- 220642**

आर्यिकारत्न श्री मृदुमति माताजी का ससंघ चातुर्मास

आध्यात्म जगत के ज्योतिर्मय सूर्य जिनशासन युग प्रमुख महाकवि निग्रन्थाचार्य गुरूवर श्री विद्यासागर जी महामुनिराज के पावन पुनीत पद पंकजों से अभिस्पर्शित भोपाल में उनकी सुयोग्य शिष्यायें- आर्यिका रत्न श्री मृदुमति माताजी, आर्यिका श्री निर्णयमति माताजी, आर्यिका श्री प्रसन्नमति माताजी तथा प्रसिद्ध प्रवचनकर्त्री विदुषी बहिन बा.ब्र. श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुष्पा दीदी जी एवं बा.ब्र. श्री सुनीता दीदी जी आदि बहिनें भोपाल के विस्तीर्ण प्रांगण में धर्मामृत की अपूर्व वर्षा कर रही हैं।

अत: आप सभी सम्यक्त्व के विषय परमार्थभूत श्रमणों के स्वरूप को जानकर उनके श्रद्धान् से सम्यग्दर्शन को निर्मल बनाते हुए सम्यज्ञान के साथ सम्यक्चारित्र का पालन करते हुए मुक्तिपथ पर अग्रसर होने के लिए सपरिवार सादर आमंत्रित हैं।

स्थान : श्री दिगम्बर जैन पंचायत कमेटी, चौक, भोपाल
आयोजक : श्री दिगम्बर जैन मुनिसंघ सेवासमिति, भोपाल
अध्यक्ष : अमरचंद अजमेरा, फोन- 0755-2741986
कार्याध्यक्ष : रमेश चंद मनयां, फोन- 0755-2538893
महामंत्री : नरेन्द्र वंदना, 0755- 3092691

भगवान ऋषभदेव संगोष्ठी सम्पन्न

भगवान ऋषभदेव की तपस्थली और हिमालय के प्रवेशद्वार हरिद्वार में 7-8 अगस्त को 'तीर्थंकर ऋषभदेव संगोष्ठी' का आयोजन पू.105 आर्यिका स्वस्तिभूषण माताजी (ससंघ) के सान्निध्य में हुआ। समारोह के विशिष्ट अतिथि डॉ. कमलकान्त बुधकर जी ने महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी देते हुए कहा कि पुराने गजेटियर में उल्लेख है कि भगवान आदिनाथ ने हरिद्वार नगरी में तप किया था। भगवान बद्रीनाथ की श्रृंगार से पूर्व की छवि को यदि देखें तो वे तीर्थंकर या भ. बुद्ध नजर आते हैं। डॉ. बुधकर के अनुसार उन्होंने भगवान विष्णु की कभी पद्मासन मूर्ति नहीं देखी। गोष्ठी में परस्पर विचार-विमर्श, शंका-समाधान आदि से भगवान ऋषभदेव विषयक अनेक तथ्य सामने आये। समाज के सभी प्रबुद्ध धार्मिक वर्ग ने गोष्ठी में भाग लिया।

डॉ. ज्योति जैन, खतौली

'ब्राह्मी लिपि सभी लिपियों की जननी है'

वाराणसी 14 अगस्त 2004, भारतीय संस्कृति को जानने हेतु प्राचीन दुर्लभ लिपियों का ज्ञान अतिमहत्वपूर्ण है। सम्राट अशोक एवं महाराजा खारवेल ने अपने शिलालेख प्राकृतभाषा और ब्राह्मीलिपि में लिखवाये। उदयगिरी-खण्डगिरी के हाथी गुम्फाशिलालेख से भारतीय संस्कृति के अनेक नए तथ्य हम जान सके। अपने देश का प्राचीन नाम भारतवर्ष भी उसमें मौजूद है। ये विचार राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली एवं भारत कला भवन के पूर्व निदेशक आर.सी.शर्मा ने वाराणसी के शारदा नगर कालोनी स्थित अनेकान्त विद्या भवन में आयोजित 21 दिवसीय ब्राह्मीलिपि एवं प्राचीन पाण्डुलिपि वाचन प्रशिक्षण कार्यशाला के उद्घाटन के अवसर पर उद्बोधन में प्रस्तुत किए।

सुनील जैन 'संचय', वाराणसी

आचार्य विद्यासागर सभागृह समारोह

18 जुलाई, 2004, रविवार को श्री पार्श्वनाथ ब्रह्मचर्यआश्रम गुरुकुल में स्थित श्री सुभाषसा केशरसा साहूजी भोजनालय के ऊपर 5,000 स्क्वायर फीट में 'परमपूज्य आचार्य विद्यासागर सभागृह' का नवनिर्माण शुभारंभ समारोह सम्पन्न हुआ।

पन्नालाल गंगवाल, एलोरा

नैतिक शिक्षण शिविरों का समापन समारोह

नई दिल्ली 10 अगस्त, दि.जैन नैतिक शिक्षा समिति द्वारा आयोजित नैतिक शिक्षण शिविरों के भव्य सामूहिक समारोह में दिल्ली के शिक्षा मंत्री श्री अरविन्द सिंह लवली ने घोषणा की कि दिल्ली के सरकारी स्कूलों में 20 मिनिट का एक पीरियड नैतिक शिक्षा का शीघ्र ही आरंभ किया जा रहा है। इस बार 50 शिविरों में लगभग 10,000 बच्चों को शिक्षा दी गई।

किशोर जैन, दिल्ली

श्री राजेन्द्र नारद का अवसान

इन्दौर के प्रसिद्ध पत्रकार, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी और जैन समाज के गौरव पुरुष स्व. श्री हुकुम चन्द जी नारद (जबलपुर) के सुपुत्र, सेवानिवृत्त वाणिज्यिक कर अधिकारी (म.प्र. शासन) **श्री राजेन्द्र नारद** का 69 वर्ष की आयु में विगत दिनों हृदयाघात से इन्दौर में स्वर्गवास हो गया। उनकी सद्इच्छानुसार उनके परिवारजनों ने मृत्योपरान्त नेत्रदान कर उनकी इच्छा का सम्मान करते हुए एक अनुकरणीय पहल की। स्व. श्री राजेन्द्र नारद के पिता स्व. श्री हुकुम चन्द जी नारद की मानवाकार कांस्य प्रतिमा जबलपुर में मध्यप्रदेश शासन द्वारा स्थापित की गई है। ईश्वर दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान करे।

सतीश नायक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधु कभी किसी का बुरा नहीं चाहते

मुनि श्री सुधासागर जी

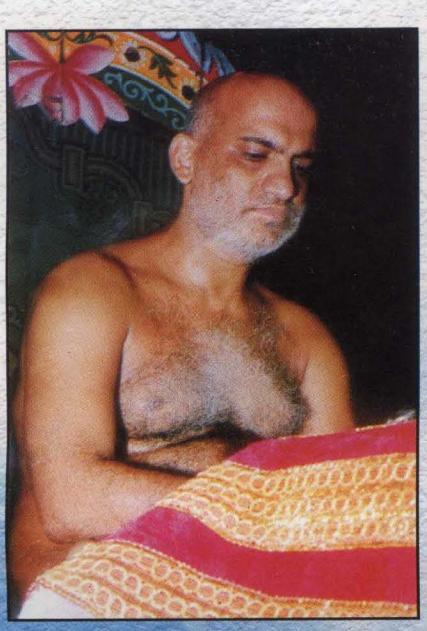

'साधु का हमेशा यह परिणाम रहता है कि किसी भी निमित्त से किसी के ऊपर कष्ट (उपसर्ग) नहीं आएँ।' जैसे एक माँ अपने बेटे को बचाती है, उसी तरह साधु-संतों की यह भावना रहती है कि सब जीवों का कल्याण हो, किसी का अहित नहीं हो, बल्कि सब सुखी बनने के रास्तों पर चलें। ऐसे ही दुर्जन व्यक्ति दूसरों को मिटाने के, सताने के और कष्ट पहुँचाने के बुरे से बुरे कार्य करने से बाज नहीं आते। धर्म और विज्ञान में यही तो भेद है कि जो सज्जन हैं वे खुद कष्ट सहकर भी दूसरे को सुखी बनाते हैं और जो दुर्जन हैं, वे किसी के सुख को देख नहीं पाते। इसीलिए ज्ञानियों ने फरमाया है कि सज्जन के पास बैठोगे तो सम्यग्ज्ञान मिलेगा और संतों के नजदीक रहे तो साधु की तरह उपकारी बन जाओगे। जीवन का यदि कल्याण चाहते हो, तो साधु की तरह समता परिणामों को धारण करना सीखो, तभी अपनी आत्मा मोक्षगामी बन सकेगी।'

साधु के क्रोध में भी कल्याण के भाव निहित रहते हैं। जैसे एक माँ गलती करने पर अपने बेटे को पीटती है, तो पुचकारती भी माँ ही है। एक दफा माँ यशोदा ने अपने लाडले नटखट कन्हैया (श्री कृष्ण) को पड़ोसन की मटकी फोड़ने पर खूब पीटा, किन्तु थोड़ी देर बाद ही माँ यशोदा खुद रोने लगी। कृष्ण यह देखकर हैरान रह गये कि माँ ने पीटा और अब माँ ही रो रही है। यही तो रहस्य था, माँ बेटे के पावन रिश्ते का। इसे ही तो भारतीय संस्कृति ने माँ की करुणा कहा है। इसी तरह गुरु फटकार लगाते हैं और अपने भक्तों को अभव्य, पापी, दुराचारी, दुष्ट तक कह देते हैं, परन्तु ध्यान रखना, गुरु की फटकार में भी कल्याण के भाव हैं। जो गलत राह पर हैं, जीवन को पतन की तरफ धकेल रहे हैं, जिनवाणी माँ के ज्ञान की अवहेलना कर रहे हैं, उन नासमझों को सही मार्ग पर लाने के लिए ही गुरु कठोर शब्दों का उपयोग करते हैं। जो गुरु की फटकार को औषधि मान लें, वही तो फिर भव्य और धर्मात्मा बन पाएगा।

गुरु और भक्तों की भाषा ऐसी ही है, जो फटकारते भी हैं, तो राह भी वे ही दिखाते हैं। सच्चे गुरु कभी अपने भक्त का तो दूर, किसी पापी का भी अमंगल नहीं चाहते। गुरु की तो यही भावना रहती आई है कि पापी भी इस संसार की मोही दशा के बंधनों से मुक्त होकर सिद्ध, बुद्ध, निरंजन बनें। आज पतन इसलिए हो रहा है कि सुविधा भोगी साधु-संतों ने सत्य को सत्यता व साहस के साथ कहना छोड़ दिया है। आज हर व्यक्ति अपने अनुकूल सुनना चाहता है। प्रतिकूल बोलने पर तुरन्त अशांति उत्पन्न हो जाती है। प्रतिकूल को कोई सुनना ही नहीं चाहता परन्तु जब गुरु ही भक्तों की गलती पर चुप्पी और आँखें बंद कर लेंगे, फिर श्रमण संस्कृति की रक्षा व भक्तों का कल्याण कैसे हो पाएगा? धर्म की आधारशिला सत्य पर है और सत्य से ही जीवन का उत्थान, समाज का विकास, परिवार का कल्याण हो सकेगा।

दिगम्बर मुनिराज कभी किसी को अभिशाप नहीं देते, बल्कि वे तो समता के धारक हैं। मुनिराज की फटकार के पीछे भी दूसरे के कल्याण का भाव निहित है। इसीलिए कहा गया है कि गुरु की पिटाई को भी प्रसाद मानो। 'गुरु जी मारे धम्म-धम्म, शिक्षा आई छम्म-छम्म।' उन्होंने इस संदर्भ में 700 मुनियों के ऊपर आए उपसर्ग व श्रुतसागर जी महाराज के करुणामयी मार्मिक प्रसंग का वृतांत सुनाते हुए कहा कि भक्त और भगवान के झगड़े में भी आनंद होता है। क्योंकि उसमें भी प्रेम समाहित है। कभी भी मुनि विरोधी मत बनो, बल्कि मुनियों के प्रति श्रद्धावान् बनो, जिससे अपने जीवन की गलतियाँ सुधार करने का अवसर हासिल कर आत्मा का उत्थान कर सको। यदि हिंसा मिटानी है, तो अपने को अन्तर से हिंसा मिटानी होगी। महावीर इसीलिए महान् बने कि उन्होंने अपने अंतर की हिंसा पर विजय पाई।

'अमृत वाणी' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि नं. UP/HIN/29933/24/1/2001-TC

डाक पंजीयन क्र. - म.प्र./भोपाल/588/2003-05

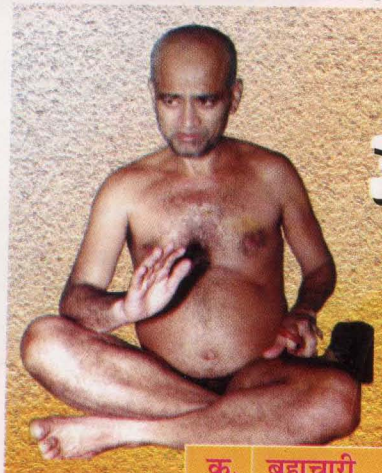

आचार्य श्री विद्यासागर जी द्वारा नवदीक्षित मुनि

क्र.	ब्रह्मचारी	स्थान	शिक्षा	मुनि नाम
1	श्री शैलेष जैन	नागपुर	बी.टेक, एम.बी.ए.	वीरसागर
2	श्री विशाल जैन	गंजबासौदा	एम.ई.	क्षीरसागर
3	श्री राजकुमार जैन	उज्जैन	एम.ई.	धीरसागर
4	श्री अमित जैन	हाट पिपल्या	बी.कॉम	उपशमसागर
5	श्री भूपेन्द्र जैन	हरदा	एम.कॉम	प्रशमसागर
6	श्री विनोद जैन	बेगमगंज	एम.ए.	आगमसागर
7	श्री अमित जैन	बुढ़ार	बी.एस.सी.	महासागर
8	श्री नितीश जैन	मुंगावली	एम.कॉम एलएलबी.	विराटसागर
9	श्री मिलन शाह जैन	महुआ	डीएमटीसी	विशालसागर
10	श्री बालासाहेब जैन	दानोली	बी.ए.	शैलसागर
11	श्री प्रदीप जैन	सागर	बी.कॉम	अचलसागर
12	श्री अतुल जैन	औरंगाबाद	बी.ई.	पुनीतसागर
13	श्री राजू जैन	मुंगावली	बी.कॉम	वैराग्यसागर
14	श्री राकेश जैन	दड़ा	एम.ए.	अविचलसागर
15	श्री राजीव जैन	मंडी बामोरा	बी.एस.सी.	विशल्यसागर
16	श्री नितेश जैन	अजनास	एम.कॉम	धवलसागर
17	श्री रवि जैन	हाट पिपल्या	बी.कॉम	सौम्यसागर
18	श्री रानू जैन	बुढ़ार	एम.ए.	अनुभवसागर
19	श्री मनीष जैन	ललितपुर	बी.ए.	दुर्लभसागर
20	श्री अमोल जैन	दानोली	इंटरमीडिएट	विनम्रसागर
21	श्री सुधीर जैन	बंडा	इंटरमीडिएट	अतुलसागर
22	श्री धवल जैन	महुआ	चार्टर्ड एकाउंटेंट	भावसागर
23	श्री अभिषेक जैन	बुढ़ार	बी.ई.	आनंदसागर
24	श्री सोनू जैन	बंडा	बी.ई.	अगम्यसागर
25	श्री पवन जैन	कुंभोज	-	सहजसागर

स्वामित्व एवं प्रकाशक, मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, जोन-1, महाराणा प्रताप नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं सर्वोदय जैन विद्यापीठ 1/205, प्रोफेसर कॉलोनी, आगरा - 282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org